UNIVERSAL LIBRARY

OU_180040

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1/M67Mo Accession No. H2458

Author मिश्र, बलदेवप्रसाद।

Title मौलिकता का मूल्य। 1950

This book should be returned on or before the date last marked below.

सर्वोदय साहित्य मंदि
कोठी, (बसन्त खण्ड,) हैदराबा

मौलिकता का मूल्य

बलदेवप्रसाद मिश्र

प्रकाशक
कमलाकान्त पाण्डेय
ठठेरी बाजार,
रामनगर, बनारस राज्य

मूल्य ३॥)
प्रथम संस्करण, १९५६

मुद्रक
गोविन्ददास माहेश्वरी
सन्मार्ग प्रेस, वाराणसी

पुस्तकके लेखक

श्री बलदेवप्रसाद मिश्र मूलतः कहानी लेखक थे, आलोचक थे, अथवा कवि थे, यह निर्णय करना कठिन है। जिस क्षेत्रमें उन्होंने कलम उठायी, अप्रतिम रहे। इन सबके ऊपर व्यंग लेखकके रूपमें इनका आचार्यत्व निर्विवाद रूपसे स्वीकार कर लिया गया है। अगाध विद्वत्ता और अध्ययनका परिचय इनकी लिखी प्रत्येक पंक्तिसे मिलता है। इस सम्बन्धमें भी निश्चित रूपसे यह बतलाना कठिन है कि किस विषयमें इनका अध्ययन अधिक गहन रहा है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी,, तमिल आदि भाषाओंपर इनका अच्छा अधिकार था। इनके साथ ही मैथिली, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबी और ब्रज-भाषा इनके लिए मातृभाषाकी तरह थी।

कवि—

ब्रजभाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। ब्रजभाषामें इस युगके प्रतिनिधि कविके रूपमें इनकी गणना की जाती थी। 'ब्रज-विभूति' नामक इनका कविता संग्रह इनको 'घनानन्द' आदि पुराने कवियोंकी पंक्तिमें ले जाकर

खड़ा कर देता है। ब्रजभाषामें इन्होंने गीत भी लिखे हैं, जिनका संग्रह यथाशीघ्र प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। ब्रजभाषाकी इनकी अन्य कविताओंका संग्रह भी किया जा रहा है।

हिन्दी कविताके क्षेत्रमें मूलतः यह 'रसवादी' थे। यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि स्वर्गीय मिश्रजी आचार्य मम्मट भट्टकी प्राचीन परम्पराकी आधुनिक कड़ी थे। कोमल-कान्त-पदावली, भावपूर्ण चित्रण और कलाका उत्कृष्टतम निर्वाह इनकी कविताओं का सहज-स्वाभाविक गुण है। रस अलंकार और छन्दकी पगडण्डीसे यह कभी नहीं भटके और यह प्रयत्न करते रहे कि दूसरे भी न भटकने पायें। इनकी रचनाओंके आलोचक यह बात मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। खड़ी बोलीकी प्रारम्भिक कविताओंका संग्रह 'दीपदान' के नामसे बहुत पहले प्रकाशित हो चुका है। नयी कविताओंके दो तीन संग्रह यथा सम्भव शीघ्र प्रकाशित करनेका प्रयत्न इनके मित्रों और स्नेहियों द्वारा किया जा रहा है।

कथाकार—

कहानी लेखकके रूपमें इनकी महत्ता और प्रतिभा सर्वविदित है। कहनेके लिए चाहे जो कहा जाय, पर तात्विक विवेचकों को यह बात स्वीकार करनी हीं पड़ेगी कि कहानी क्षेत्रमें अपनी तरहके यह अकेले थे। इनकी प्रत्येक कहानीका कथानक एकदम अछूता है। अपनी कहानियोंमें जैसा सजीव चरित्र-चित्रण इन्होंने किया है, दूसरे लेखकोंमें वह दिखाई तक नहीं देता। इनकी कहानियोंमें कहीं भी

अश्लीलता जैसी कोई चीज नहीं है। न नारीके अङ्ग-प्रत्यङ्गका वर्णन है, न केलि-चर्चा है। यहाँ तक कि इनकी कहानियोंमें स्त्री पात्र हैं ही नहीं, जहाँ हैं भी, परोक्ष रूपमें ही उनकी सत्ता है। फिर भी कहानी अपने पाठकको अपनेमें बाँधके बैठा लेती है। प्रवाह और उत्सुकता इनकी कहानियोंका प्रधान गुण है। इनकी प्रत्येक कहानीका कथानक अलग है, विषय अलग है, शैली अलग है। दूसरोंका अनुकरण तो बहुत दूरकी बात है, स्वयं अपने अनुकरणसे भी यह सदा बचते रहे हैं। आजके प्रचारवादी युगमें यह प्रचारसे दूर रहे, दलबन्दीसे अलग रहे, फिर भी कहानी क्षेत्रमें इनकी सत्ता और महत्ता स्वीकार न करनेका साहस कोई नहीं कर पाता। हिन्दीके प्रमुख कहानी लेखकोंमें इनकी गणना जीवित अवस्था भले न की गयी हो, पर अब तो करनी हीं होगी। कहानी क्षेत्रमें इनकी तान्त्रिक-कहानियोंका लोहा सभी स्वीकार करते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि हिन्दीमें सर्वथा मौलिक कथाकारोंकी गणना जब कभी की जायगी तो इनका स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण होगा। इनकी कोई भी कहानी निरुद्देश्य नहीं है। साथ ही सब अर्थगौरवसे परिपूर्ण हैं। इनकी कहानियोंका मूल्याङ्कन और समीक्षा अभी बाकी है। इनकी कहानियोंके तीन संग्रह अबतक प्रकाशित हो चुके हैं। अनुभूति (सरस्वती प्रेस, काशी) शव साधन और उलूकतन्त्र [ज्ञानमण्डल, काशी] चार या पाँच कहानी-संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित हो जायँगे।

आलोचक—

आलोचकके रूपमें इनकी धाक सभी स्वीकार करते हैं। इनका गहन-अध्ययन तत्काल यह बतला देता था कि रचनामें कितना अंश

मौलिक है, कितना अनुवाद मात्र और कितना तोडमोड़के भर लिया गया है। साहित्यिक चोरोंके लिए तो यह आतङ्कसे हो गये थे। इनके नामसे लोग थर्राते थे। कुछ कथित आचार्योंसे इनका इतना विषम साहित्यिक मल्ल-युद्ध हुआ कि आचार्य गण तोबा बोलके पलायित हो गये। रस, अलङ्कार, शब्द, व्युत्पत्ति, समीक्षा-सिद्धान्त आदिके यह चतुरस्त्र विद्वान थे।

साहित्य क्षेत्रमें बढ़ती हुई उच्छृङ्खलताके लिए यह अंकुशके रूपमें सामने आये। इनके अंकुशसे घायलोंकी संख्या जब बहुत अधिक बढ़ गयी तो उन सबने मिलकर लखनऊके 'नव-जीवन' में प्रकाशित होनेवाली 'लखनऊके कवियोंकी समीक्षा' शीर्षक लेखमालाका प्रकाशन बन्द करा दिया। यह हिन्दीका बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि आजके रचनाकार अपनी त्रुटियोंसे परिचित तक नहीं होना चाहते। त्रुटियाँ दूर करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इनकी आलोचना बहुत ही तीखी और कठोर होती थी। उसमें 'मुलाहिजा वाद' के लिए कहीं स्थान नहीं रहता था। इनकी आलोचनाका आधार विशुद्ध शास्त्रीय सिद्धान्तकी समीक्षा मात्र होता था। निर्भीकता इनकी विशेषता थी। इस निर्भीकतामें न द्रोहकी भावना थी, न कटुताकी। व्यक्तिकी अपेक्षा प्रवृत्तिकी आलोचना इनका ध्येय था। इनके कुछ शास्त्रार्थों और आलोचना निबन्धोंका प्रकाशन जब पुस्तक रूपमें सामने आयेगा तो आलोचना शास्त्रके लिए नयी देनके रूपमें इसे स्वीकार किया जायगा। श्री वृन्दावनलाल वर्माके शब्दों में यह पैने समालोचक और गहरे विद्वान् थे। कानपुरके दैनिक 'प्रताप' के अनुसार आलोचना क्षेत्रमें यह 'धर्मकांटा' थे। विद्वानोंकी गोष्ठियोंमें इनका मत 'अन्तिम प्रमाण' के रूपमें स्वीकार किया जाता था।

व्यंग लेखक—

हास्य और व्यंग लिखनेमें इनका आचार्यत्व निर्विवाद है। कहानी, लेख और कविता तीनों क्षेत्रोंमें इन्होंने हास्य और व्यंगका बहुत सफल प्रयोग किया है। इनके व्यंग बहुत चुभते हुए होते थे। इनकी पैनी बुद्धि बिना किसी प्रयास के त्रुटि पकड़ लेती थी और विशेषता यह थी कि व्यंगके पंकमें यह स्वयं कमलकी तरह निर्विकार रहते थे। द्रोह, द्वेष, और मात्सर्यकी भावनाने कभी इनका स्पर्श तक नहीं किया।

श्री वृन्दावन वर्मा 'स्वतन्त्र भारत' के परिहास स्तम्भ 'काँव-काँव' से इतना अधिक प्रभावित हुए कि 'काँव-काँव' के छींटोंको 'अमर-साहित्य' की श्रेणीमें निःसंकोच रखनेको तैयार हैं। उनके कथनानुसार 'इतने चुटीले, सार्थक और सुन्दर व्यंग शायद ही किसी हिन्दी या अंग्रेजी पत्रमें निकलते हों। अन्य भाषाओंकी बात नहीं कही जा सकती।' सच-मुच व्यंग लेखकके रूपमें इन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। इनके हास्य और व्यंगसे पूर्ण निबन्ध और कविताओंका पुस्तक रूपमें प्रकाशन अभी नहीं हुआ है। इन्होंने स्वयं कभी अपनी रचनाओंके प्रकाशनकी चिन्ता नहीं की। न इसकी आवश्यकता ही समझी। अब इनके व्यंग-प्रधान निबन्धों और कविताओंका प्रकाशन भी आवश्यक हो गया है।

नाट्यशास्त्र—

विद्याध्ययन इन्होंने आचार्य गोस्वामी दामोदर लाल जी से किया था। उनसे इन्होंने, व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदिका अध्ययन करनेके बाद मुख्य रूपसे भरत मुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' का अध्ययन किया था।

नाट्यशास्त्रका अध्ययन करनेके लिए ही इन्होंने संगीत और चित्रकलाका ज्ञान भी प्राप्त किया। देश-विदेशके पूरे नाट्य-साहित्यका गहन अध्ययन किया। नाट्यशास्त्रके सम्बन्धमें इन्होंने जो 'नोट' तैयार किये हैं, वह पाँच छ सौ पृष्ठोंमें सुरक्षित हैं। लखीमपुर स्थित युवराजदत्त कालेजके हिन्दी विभागके अध्यक्ष कुंअर चन्द्रप्रकाश सिंहने ठीक ही लिखा है कि 'हिन्दी के दुर्भाग्यसे उसका एक महारथ, उसका एक साधनावान् सपूत उठ गया। दुःख इस बातका है कि इनकी अगाध विद्वत्ताका कोई उपयोग नहीं हो पाया। भारतीय 'नाट्यशास्त्र' जैसे दुरूह विषय के जानकार हिन्दीमें कहाँ है? दैवदुर्विपाकसे भरत मुनिके 'नाट्यशास्त्र' का गुरु-मुखसे अर्जित और अपनी महती साधनासे वर्धित इनका विशाल ज्ञान हिन्दीके काम नहीं आ सका। यह सामान्य क्षति नहीं। इसे राष्ट्रीय क्षति कहें तो जरा भी अत्युक्ति नहीं होगी, पर राष्ट्र अभी अपने रत्नोंको कहाँ पहचानता है?'

व्यक्तित्व—

भारत प्रसिद्ध वैदिक परिवार और न्यायशास्त्रके उद्भट विद्वान् पितृव्य न्यायाचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्रके सम्पर्कमें रहनेके कारण मीमांसा वेद और वेदांगसे सम्बन्धित विषयोंका जो सहज-स्वाभाविक ज्ञान इनको था, वह दूसरोंके लिए घोर परिश्रम साध्य भी नहीं था। इसी तरह भारतीय दर्शन, उपनिषद् और पुराणोंका मन्थन इनकी अपनी विशेषता थी। तन्त्रशास्त्रमें इनकी गहरी पैठ थी। इनका शास्त्रीय ज्ञान इन्होंने परिश्रम पूर्वक प्राप्त किया था। रस, अलंकार और नाट्यशास्त्र पर इनका असाधारण अधिकार था। इनकी विद्वत्ताके

सम्बन्धमें केवल यह कहना अलं होगा कि काशीकी गहन ज्ञान-परम्पराके यह प्रतीक और प्रतिनिधि थे। इनके निधनसे ज्ञानका वह कोष लुप्त हो गया, जिसका उपयोग स्वेच्छया चाहे जहां किया जा सकता था।

विद्वत्ताके साथ ही इनका व्यक्तित्व भी अत्यधिक आकर्षक था। स्वस्थ शरीर, लम्बा कद, भरा हुआ चेहरा। धोती, कुर्ता अथवा पैजामा और कुर्ता, यही इनकी साधारण वेषभूषा थी। एक हाथमें कुछ पुस्तकें और दूसरेमें छड़ी। थोड़े और स्पष्ट शब्दोंमें अपनी बात कहना इनकी विशेषता थी। वाणीके इस संयममें न कहीं उदासीनताका भाव झलकता था, न अहंकार, न शुष्कता। वातावरण और वस्तुस्थितिका प्रभाव इन पर कभी नहीं पड़ता था। अपने कार्यालयमें रहें, घरमें रहें, रेष्टुरेण्टमें रहें या सभा-गोष्ठियोंका सभापतित्व करते रहें, मनस्थितिमें कभी अन्तर नहीं पड़ता था। क्रोधसे तो मानों इनका परिचय ही नहीं था। दीर्घ मौन हीं अधिकसे अधिक इनकी अप्रसन्नताका सूचक होता था। हँसना तो दूर रहा, इनको मुस्कुराते भी कम लोगोंने हीं देखा होगा। इनका व्यक्तित्व कुछ इस तरहका था कि सामने आने पर हृदय सहज ही श्रद्धासे नत हो जाता था। आत्मप्रचार और बनावटसे यह सदा कोसों दूर रहे। पर कभी किसीके सामने झुके नहीं, पैसेके लिए आदर्शसे च्युत नहीं हुए। किसीकी चाटुकारी नहीं की। लखनऊके 'नवजीवन' ने लिखा है 'संस्कृत साहित्यके अच्छे जानकार, सुविज्ञ आलोचक, कवि, कथाकार और नाटककार होनेके साथ ही यह सफल और सुलझे हुए पत्रकार थे। हास्य और व्यंग साहित्यमें इनकी

विशेष अभिरुचि थी। यदि परिस्थितिसे विवश होकर इन्हें दैनिक पत्रों में कार्य न करना पड़ता तो अपनी प्रतिभा और सूझबूझके कारण किसी भी साप्ताहिक अथवा मासिक पत्रको सांस्कृतिक संस्थाका स्वरूप प्रदान करनेकी क्षमता इनमें थी। अलमस्त, उदार स्वाभिमानी व्यक्ति थे। संस्कृत साहित्यके प्रकाण्ड पण्डित महामहोपाध्याय श्री विद्याधर शास्त्रीके पुत्र होनेके नाते इन्हें जीवनमें सुख और आराम पानेकी सुविधा कम नहीं थी। परन्तु इन्होंने स्वाभिमानी साहित्यकार एवं आदर्शोंके प्रति निष्ठावान् पत्रकारका जीवन व्यतीत किया। लखनऊमें कुछ समय तक दारुण परिस्थितियोंका सामना इन्हें करना पड़ा, वैसी स्थिति बड़ों-बड़ों को आदर्शसे गिरा देती है। परन्तु बलदेवजीने कभी किसीके समुख सिर नहीं झुकाया। अनेक असुविधाओं, कष्टों और विषम आर्थिक समस्याओंका अभूतपूर्व साहसके साथ सामना करते हुए इन्होंने साहित्यकारों और पत्रकारोंके सम्मुख आत्मसम्मान और आदर्श रक्षाके सम्बन्धमें जो दृष्टान्त प्रस्तुत किया, वह गर्वकी बात है। मित्रको ऐसा विनम्र मित्र मिलना कठिन है। सदा अपनी मस्तीमें खोये रहनेवाले इस श्रमजीवी पत्रकारके निधनसे उसके मित्रों, परिचितों और उसके साहित्यके पाठकोंकी मस्ती भी खो गयी।'

जन्म और मृत्यु—

काशीके भारत प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय स्वर्गीय पण्डित प्रभुदत्त शास्त्रीके पौत्र और स्वर्गीय पण्डित विद्याधर शास्त्री [काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके धर्म विज्ञान विभागके अध्यक्ष और डीन ऑव थियालोजी ऑव फेकल्टी] के पाँच पुत्रोमें सबसे बड़े थे। इनका जन्म संवत्

१६७० में वैशाख मासके कृष्ण पक्षमें ६ तिथिको हुआ था। प्रारम्भ में इण्टर तक अंग्रेजीका अध्ययन किया। उसी समय ब्रज भाषाकी ओर झुकाव हुआ और उनमें कविता लिखने लगे। इसी समय स्वर्गीय प्रेमचन्दजीके सम्पर्कमें आये और कहानी लिखने लगे। प्रेमचन्दजी उसी समय इनसे बहुत प्रभावित हो गये थे। इसी समय संस्कृतका अध्ययन गोस्वामीजीसे प्रारम्भ किया और साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। १६४३में पटनाके आर्यावर्त'में समाचार सम्पादकके रूपमें काम किया। १६४४में 'आज' के 'रविवार-संस्करण'के सम्पादक नियुक्त हुए। १६४८ में लखनऊ चले गये। प्रारम्भमें कुछ दिनों 'रक्षक' में रहे। बादमें 'स्वतन्त्रभारत' के 'साहित्य-सम्पादक' के रूपमें काम करते रहे। इस वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालयमें एम० ए० की परीक्षा में भी सम्मिलित हुए थे। परीक्षाफल मृत्युके बाद प्रकाशित हुआ है। विगत २० मई (१६५६) को प्रातः ६॥ बजे लखनऊके मेडिकल कालेजमें स्वर्गवासी हुए।

*

[स्वतन्त्रभारत, नवजीवन, प्रताप, भारत, आज, बनारस, सरस्वती और त्रिपथगा आदिमें प्रकाशित लेखों और संस्मरणोंसे संकलित]

क्रम—

लघु कथाएं

* मौलिकता का मूल्य	तरंग	१६४४	१
* सिनेमा	अजगर	१६४७	८
* गवाह	अजगर	१६४७	१४
* तकल्लुफ़	अजगर	१६४७	२०
* आकाशवृत्ति	अजगर	१६४७	२३
* सड़कका सांड़	तरंग	१६४५	३०
* हड़ताल	तरंग	१६४५	३४
* चावलका विटामिन	आर्यावर्त	१६४३	३८
* अधूरी कहानी	+ +	१६४४	४१
* पण्डित जी	संसार	१६४५	४७
* नौकर का बेटा	आर्यावर्त	१६४३	५५
* नवीन सम्पादक	आज	१६४४	५८
* राष्ट्रभाषा संसकिरत	संसार	१६४५	६२

मनोरंजक लेख

* समस्या और समाधान ··· तरंग ··· १६४४ ··· ७३
* सभापति कौन हो ··· संसार ··· १६४५ ··· ७८
* काशी ही कुरुक्षेत्र है······तरंग···१६४५········· ८४
* गणतन्त्र·············· स्वतन्त्र भारत ········ ८६

काँव-काँव

* काक-कोकिल-संवाद·································६५
* बरसो घनश्याम इसी वन में··························१०२
* मुझे बल और प्रेरणा मिलती है·······················१०५
* सौन्दर्य प्रतियोगिता·································१०६
* नई पसन्द पुरानी पसन्द·····························११२
* स्वच्छ काशी··११५
* राजद्वारे श्मशाने च·································१२५
* तीन जन्म का सम्बन्ध·······························१२७
* वृद्धस्य तरुणी भार्या································१३०
* एम० एल० ए० और अफसर··························१३२
* जूआ और जीवन····································१३५

चोखे—चौपदे

* * * * * ···································१३६
* महर्षियों के उपदेश·································१६०

——

पहले यह पढ़िये--

'हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' नामक पुस्तक के लिए बम्बई के एक प्रसिद्ध प्रकाशक ने श्रीबलदेव प्रसाद मिश्र की भी एक कहानी चाही। पुस्तक के सम्पादक ने लिखा कि आप अपनी कहानियों में जिसे सर्वश्रेष्ठ मानते हों, भेज दें। साथ ही यह भी लिखें कि आप सर्वश्रेष्ठ क्यों मानते हैं। इसके उत्तर में इन्होंने लिखा कि 'रचना में रचनाकार की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। अतः रचना 'आत्मा वै जायते पुत्रः' की कोटि में आती है। पुत्र चाहे जितना निर्गुण और कुरूप हो, प्रिय लगता है।' लेकिन इनकी कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं, जिनके साथ इनका व्यवहार 'त्याज्य पुत्रों' जैसा रहा है। प्रस्तुत संग्रह में संकलित लघु कथाएँ और मनोरंजक लेख इसी कोटिमें आते हैं। इस संग्रह में संकलित प्रत्येक रचना कल्पित नाम से प्रकाशित हुई हैं। बलदेव प्रसाद मिश्र की रचनाके रूप में इनका प्रकाशन और परिचय पहली बार इसी संग्रह में होगा। न जाने क्यों अपने इन 'पुत्रों' की स्मृति भी इनके मानस से उतर गयी थी। केवल यही नहीं' अनुभूति' नामक अपने प्रथम कहानी संग्रह और कविता संग्रह 'दीपदान' की चर्चा इन्होंने कहीं नहीं की है। लखनऊ के एक साप्ताहिक पत्र में अपना

परिचय स्वयं लिखने के लिए बाध्य किये जाने पर भी इन्होंने अपनी प्रकाशित रचनाओं में केवल शवसाधन, उलूकतन्त्र और ब्रज विभूतिका ही उल्लेख किया है। यदि मिश्रजी जीवित होते तो इस निर्दय उपेक्षा पर साहित्य जगत निश्चित रूपसे जवाब तलब करता, क्योंकि इस संग्रहमें संकलित लघु कथाएँ अपनी मौलिकता, सूझ और कहानी-कला की दृष्टि से किसी प्रकार भी कम नहीं हैं। यह अपने निर्माता की ओर ध्यान आकृष्ट करती हैं और उसकी प्रतिभा का कायल होने के लिए बाध्य करती हैं। किसी भी रचना की इससे अधिक सफलता और क्या मानी जा सकती है! फिर भी यह तो सुनिश्चित ही समझा जाना चाहिये कि लेखकका मूल्यांकन केवल इस संग्रह को आधार मानकर करना उसके प्रति घोर अन्याय होगा। प्रस्तुत संग्रह जिस दृष्टि से प्रकाशित किया गया है, उसी दृष्टि से इसपर विचार होना चाहिये। लेखक की सर्वतोमुखी प्रतिभा का अध्ययन करने में इस संग्रह से सहायता मिलेगी। इसी दृष्टि से 'गुदड़ी में छिपे यह लाल' पारखियों के हाथों में दिये जा रहे हैं।

—प्रकाशक

लघुकथाएं

स्वर्गीय बलदेवप्रसाद मिश्र की जो लघुकथा इस संकलन में संकलित की गयी हैं, वह उनके नाम से प्रकाशित नहीं हुई हैं। यह सभी कथा पंचानन्द, अलखनिरंजन, अहितुण्डिक भुजंगराव जोगदण्ड, हलायुध के नाम से काशी के दैनिक आज, संसार, तरंग, अजगर और पटना के आर्यावर्त में १६४३-४४ में प्रकाशित हुई हैं। स्वर्गीय मिश्र जी अपनी इन कथाओं को 'फर्माइशी' कहानी स्वीकार करते थे। इसीलिए उन्होंने अपने कहानी संकलनों में इन्हें स्थान नहीं दिया था! पर 'कहानी कला' की दृष्टि से इन कहानियों का अपना महत्व और स्थान है। इनसे लेखक की मौलिकता, अछूती कल्पना और सूझका जो आभास मिलता है, वह निश्चित रूप से अभिनन्दनीय है।

मौलिकता का मूल्य

मैं हिन्दी का लेखक हूँ। मैं इस समय लेखक हुआ हूँ, यह दुर्भाग्य की बात है, क्योंकि आजकल अंगरेजी पढ़ने का लोगों में फैशन है और बंगला, गुजराती आदि जानना विशेष योग्यता में दाखिल है। अतः पहले के लेखकों को उक्त भाषाओं की चीजें अपने नाम से हिन्दी में 'चला' देने का जो सुयोग प्राप्त था, वह मुझे नहीं है। मुझे मौलिक चीजें प्रस्तुत करने की चेष्टा करनी पड़ती है। इसके लिए मैं जो उपाय करता हूँ, उन में एक है कि मैं रात को ७ बजे से ११ बजे तक ······होटल में जाकर बैठता हूँ। वहाँ जो कांड होते हैं, उनसे मैं कुछ पैदा कर लेता हूँ। यह तो आप समझ ही गये होंगे कि मैं वहाँ केवल चाय पीता हूँ।

होटल के मैनेजर ने मेरे लिए एक टेबुल और कुर्सी—'रिजर्व' कर दी है। रोज एक ही समय वहाँ बैठने से मेरे बारे में लोगों की अनेक धारणा हैं। कुछ लोग मुझे सी० आई० डी० भी समझते हैं। इतना और कह दूँ कि होटल लबे सड़क है।

कल मैं वहाँ चौथा प्याला पी रहा था कि हठात् एक मनुष्य भीतर आया। स्वच्छ वस्त्र पहने था वह, जूतों पर कुछ धूल पड़ी हुई थी, पर

वे नये ही थे। उसने इधर-उधर देखा और फिर मेरे पास आकर बोला—मैं इस टेबुलपर बैठ सकता हूँ ?

मेरे उत्तर देनेके पहले ही वह एक कुर्सी दूसरे टेबुल के पास से खींचकर बैठ चुका था। अवश्य ही मैं यही कहने वाला था कि मुझे आपत्ति है।

उसने रूमाल से मुँह पोंछते हुए कहा—मैं कई दिनों से आपको देखता हूँ। होटल भर में आप ही मुझे संगति के लायक देख पड़े।

मैंने कुछ कहा नहीं; मन में सोचा कि अभी दुनियाँ समझदारों से खाली नहीं है। यदि यह मनुष्य गांधीजी होता तो मैं इसकी राय १५) देकर भी लिखवा लेता और फ्रेम में मढ़वा कर अपनी बैठक में टांग देता। इससे मेरी श्रीमतीजी की धारणा तो अवश्य बदल जाती।

उसने पुनः कहा—मेरा नाम है रोमांचित राय, चटगांव का रहने वाला, लाहौर में बहुत दिन रहने से हिन्दी अच्छी ही सीख गया हूँ। यू ब्वाय ! क्या है ? हाँ, आप क्या लेंगे ? वाह ऐसा हो सकता है ! ब्वाय ! दो मुर्ग मुसल्लम, स्लाइस, हाँ, पहले पानी लाओ।

हम लोगों ने खाना शुरू किया। रोमांचित रायने पूछा—ए पेग ?

मैंने कहा—नहीं। पीता नहीं।

राय ने पूछा—क्वाइट श्योर ? ब्वाय ! एक पेग ह्विस्की। नहीं है ? क्या है ? इंपीरियल ? दुत् ! गुलाब ! अच्छा वही लाओ।

फिर मेरी ओर मुड़कर कहा—टुयोर हेल्थ ! हां, मैं रेणुका के प्रेम में पड़ गया था।

मैंने पूछा—कौन रेणुका ?

राय ने हँसकर कहा—माईडियर! अरे वही, हमारी पड़ोसिन! हम से प्रथम जब आंख में आँख मिली तो एक आग की लौ हमारी आँख में से होकर खोपड़ी में घुस गयी। खोपड़ी के बीचोबीच जाकर वह रुकी और सर से दिल में उतर गई। ब्वाय! एक पेग और।

तुमने देखा है रुई का ढेर? उस पर अंगार रख देने से जैसे वह नीचे धँसता जाता है, वैसे ही वह लौ दिमाग तक धंस कर नीचे उतर गयी। अब वह दिल में है, धुआँ जो उठता है, खोपड़ी में जमता जा रहा है।

राय ने इतना कहकर पेग खाली कर दिया। कहा—हम 'नीट' पीता है। ब्वाय बोतल इधर रख दो।

हाँ, हम दूसरे दिन रेणुका से मिले। उसका हाथ पकड़कर कहा—हम से शादी करो। पासबुक हमारी जेब में थी, उसे दिखलाया। रेणु ने कहा—शादी की बात फिर होगी, चलो घूमने चलें।

मैंने पूछा—इतनी जल्दी आपने रास्ता पार कर लिया?

राय ने हँस कर कहा—एक्सीपीरियंस्ड होने से ऐसा ही होता है—तुम्हारा साहित्य पालन करने से तो उम्र बीत जायगी और मामला पूर्व-राग तक ही रह जायगा। हमारे यहाँ केवल प्रत्यक्ष-दर्शन है। उसके बाद फ्रैंक बातचीत।

मैंने पूछा—उसके बाद?

राय ने कहा—गांधर्व विवाह। तो लौटने के वक्त मैंने रेणु को एक बड़ा डब्बा बिस्कुट का, एक डब्बा ब्लैक एण्ड ह्वाइट सिगरेट, लिपस्टिक,

क्वीन आफ नाइट एक दर्जन खरीद दिया। अर्थात् खरीदा उसने, दाम मैंने दिया।

मैंने पूछा—शादी का क्या हुआ ?

राय—सुनो तो! रेणु ने १५-२० दिन बाद कहा कि मैं तुम से शादी नहीं कर सकती, प्रेम कर सकती हूँ। शादी तुम मेरी सिस्टर से कर लो।

मैंने कहा—राय साहब! जब प्रेम कर सकती थी तो शादी में क्या आपत्ति थी ?

रायने कहा—शादी का वादा वह एक ईडियट से कर चुकी थी। तो, मैंने रेणु से कहा कि शादी तो मैं तुम्हीं से कर सकता हूँ।

मैंने पूछा – उसकी सिस्टर अच्छी नहीं थी क्या ?

राय ने कहा—थी, लेकिन आग की जो लौ रेणु को देखने से उठी थी, वह उसकी सिस्टर नहीं उठा सकी। उससे शादी हो सकती थी, प्रेम नहीं। मुझे शादी और प्रेम दोनों चाहिये।

मैंने पूछा—तो शादी की जिद तुम्हें क्यों है ?

राय ने कहा—प्रेम तो गली-गली मिल सकता है। शादी नहीं की थी, इससे शौक हुआ। लेकिन प्रेम न हो तो शादी क्या ?

मैंने कहा—वहीं शादी कर लो।

उत्तर मिला—वे शादी नहीं करतीं।

मैंने कहा—शादी के बाद भी तो प्रेम हो सकता है।

राय ने कहा—शादी से बच्चा पैदा हो सकता है, प्रेम होगा ही, यह कौन जाने!

मैंने कहा—मेरा तो ऐसा ही अनुभव है।

राय ने कहा—डियर, डियर! वह प्रेम नहीं हैं। वह दूसरी चीज है। वह एक तरह का आकर्षण है, जो दो बच्चे होने के बाद समाप्त हो जाता है।

मैंने कहा—गलत बात! असली प्रेम तो बच्चे होने के बाद शुरू होता है।

राय ने कहा—वह माया है। प्रेम नहीं। वह जंजाल है! उसे प्रेम कहते हो? छिः!

मैंने कहा—लेकिन शादी के बाद प्रेम नष्ट न हो जायगा, इसकी क्या गारंटी है?

राय ने मेरी ओर देखा, फिर बोले—हाँ, कच्चा प्रेम टूट जायगा। असली प्रेम फाँसी की रबर की रस्सी जैसा होता है।

मैंने बाधा देकर कहा—राय, तुम घृणित उपमा दे रहे हो, हीनोपमा!

राय ने कहा—जाने दो, रेणु ने कहा कि—यूसुफ अगर शादी न करना चाहे तो तुमसे ही शादी कर लूंगी।

मैंने पूछा—यूसुफ तो मुसलमानों का नाम होता है।

राय ने कहा—हाँ, वह मुसलमान ही है। और क्या लोगे? ब्वाय!

मैंने कहा—अब कुछ न चाहिये।

राय ने मनीबेग निकाला, उसमें से एक १०) का नोट निकाल कर कहा, यह पूरा समाप्त होना चाहिये। न एक पैसा कम न एक ज्यादा। हाँ इसे तुम रख लो।

राय ने हाथ बढ़ाकर नोट मेरी जेब में नीचे तक ढकेल दिया। फिर कहा—

मैं यूसुफ से मिला। उसे सब बातें समझायी और कहा कि शादी मुझे कर लेने दो, प्रेम तुम करते रहना।

मैंने पूछा—तब ?

राय ने कहा—वह भी मेरे जैसा निकला। वह भी शादी का भूखा है। इधर दो महीनों से वे सैर को निकले हैं। मैं भी साथ हूँ, पर रहता अलग हूँ। आज उन्होंने मुझ से इसी होटल में मिलने का वादा किया है। आज यूसुफ अपनी आखिरी राय बतायेगा। तुम ब्राह्मण हो ?

मैंने कहा—हाँ

रायने झुक कर मेरे पैर छुए, कहा—मेरे लिए प्रार्थना करो। मेरे अपराध क्षमा करना !

मैंने कहा—कोई अपराध हो तब न !

राय ने कहा—मेरा भाग्य ऐसा है कि लोग मुझे परले सिरे का बदमाश समझने लगते हैं। मेरे जाने के बाद तुम भी यही समझोगे।

मैंने कहा—मैं तुम्हें, कसम ·····

राय ने रोक कर कहा—रहने दो। कहीं पछताना न पड़े।

इसी समय होटल के दरवाजे के पास से एक स्त्री और एक पुरुष साथ-साथ जाते दिखाई पड़े। राय झपटकर उठा, बोला—यही है रेणुका, यही···। मैं अभी लाया उसे, दो कुर्सियाँ और रखवा लो।

राय झपट कर बाहर निकला। मैंने घड़ी की ओर देखा। १०। बजे थे। मैंने कुर्सियाँ मँगवाकर रख लीं। ब्वाय को सावधान रहने को कहा। समय बीतने लगा। धीरे-धीरे ११।। बजा। मैंने सोचा—कहीं राय और यूसुफ में लड़ाई तो नहीं हो गई ! या कोई और दुर्घटना !

मैनेजर ने आकर कहा—१२॥ बजे हैं। आज तो आप बहुत देर बैठे ! अब हुक्म हो तो होटल बन्द करूँ।

मैं राय के बारे में सोचता हुआ उठ खड़ा हुआ। जेब से नोट निकाल कर मैनेजर की ओर बढ़ाया, पर रुक गया। वह नोट नहीं, सिनेमा की नोटिस थी। मैंने कई बार जेब देखी, तब मैनेजर से कहा—भाई, बिल कल चुकाऊँगा।

———

सिनेमा

काशी के सुनीतिप्रसाद शाह को कम लोग जानते हैं, चिथरू साव को सब जानते हैं। चिथरू साव अपने वंश में उस प्रकार शोभित हुए, जैसे ५ कैंडिल पावर के बल्बों के बीच ४५ पावर का बल्ब शोभित होता है। अंगरेजी और उनके धन ने उन्हें अपने वंश से अलग खड़ा-कर दिया। उस समय चिथरू साव ने अपना नाम सुनीतिप्रसाद शाह रख लिया।

शाहजी की जमींदारी आजमगढ़ में थी। उनकी जमींदारी से सटी जमींदारी के स्वामी का नाम धरमधुजा सिंह था। दोनों जमींदार सदा से एक निश्चित व्यवधान पर रहते आये हैं, जैसे राहु केतु एक दूसरे से सातवें स्थान पर रहते हैं।

धरमधुजा सिंह कभी-कभी काशी आते थे—कचहरी उन्हें खींच लाती थी। इस बार वे काशी आये तो कचहरी में ही उनकी भेंट शाहजी से हो गई। शाहजी ने बढ़कर सिंहजी को नमस्कार किया और कचहरी बन्द होने पर उन्हें अपने साथ ही लेते आये। सिंहजी शाहजी के अतिथि हो गये। सिंहजी के साथ उनके मित्र घिरांवन सुकुल भी थे।

१

सिंहजी शाहजी के खास कमरे में टिकाये गये। सिंहजी ने पलंग-पर अपनी गठरी रखी, उस पर टेक देकर बैठे। दूसरे पलंग पर सुकुलजी बिराजे। सुकुलजी सिंहजी की अपेक्षा नयी दुनियाँ से अधिक परिचित थे।

सहसा सिंहजी खड़े हो गये और उन्होंने पलंग पर बिछा गद्दा उठाकर एक कोने में फेंक दिया और पलंग पर अपनी दरी बिछाकर बैठे। तब उन्होंने सुकुलजी को अपने इस कार्य का अभिप्राय समझाया। उन्होंने कहा—ऐसन बिछावन कौने काम कऽ, एक ठिकाने बैठ नाही पावत हई। घिसकत जात हई। [ऐसा बिछौना किस काम का ? एक जगह बैठ नहीं पाता। घिसकता जाता हूँ।]

सुकुलजी का बिछौना भी वैसा ही था। उन्होंने अपना कम्बल उसी पर बिछा लिया। सिंहजी ने उठकर उन्हें बिस्तर समेत एक कोने में फेंक दिया और कहा—एक दिन के बदे आदत बिगड़बऽ ? [एक दिन के सुख के लिए आदत बिगाड़ोगे ?]

सुकुलजी चुपचाप उठे और अपना कंबल उठा कर पलंग पर बिछा लिया और बैठे।

सिंहजी ने 'खैनी' बनाई और उसे जमाने के दो मिनट बाद सुकुलजी से पूछा—अब हम थूकी कहाँ ? [अब मैं थूकूँ कहाँ]

सुकुलजी ने चारों ओर देखा। उन्होंने कई बार देखा। इसका तात्पर्य सिंहजी यह समझे कि कहाँ बताऊँ ? तब सिंहजी उठे। उन्होंने पीतल की फूलदानों में से फूल निकाल कर एक कोने में फेंक दिये और प्रेम पूर्वक अर्थात् कलेजा, नाक और मुँह तीनों की पूर्ण सहायता लेकर

उसमें थूका। तब उसे अपने पास रखकर, जमकर बैठे। तब उन्होंने फरमाया—कतनी झंझट बा। गाँवें जहैं चाहे थूक! [कितनी झंझट है। गाँव में चाहे जहाँ थूको!]

अब सिंहजी ने कमरे का अवलोकन प्रारंभ किया। एक दीवाल पर कुछ चित्रों को उन्होंने ध्यान से देखा, उठकर वहां आये, मजे में देखा और कहा—ई सब जनौं चिथरूक रंडी आयं। [ये सब शायद चिथरू की वेश्याएं हैं]।

सुकुल जी भी पास आकर खड़े हो गये। उन्होंने पूछा—कैसे?

सिंहजी बोले—भले घर कऽ मेहरारू फोटो खिचाई? अउर ऐसे? [भले घर की स्त्री फोटो खिंचावेगी और ऐसे?]

सुकुल जी को भी विश्वास हो गया। उन्होंने कहा—सहरिया बद-मास होते हैं। [शहरी बदमाश होते ही हैं।]

सिंहजी बोले—अउर एनहिन के लगे बापौ कऽ फोटो लगाये है। [और इन्हीं के पास बाप का फोटो भी लगा रखा है।]

सुकुलजी ने कहा—कपूतन कऽ एही लच्छन हौ। [कपूतों का यही लक्षण है।]

इसके बाद ये लोग दूसरी दीवाल की ओर घूमे।

× × ×

रात को खाना पीना हो जाने के बाद शाहजी ने सिंहजी से कहा—सबेरे तो आप चले जायँगे। रात को सिनेमा देख लीजिये।

सिंहजी ने पूछा—हम सेर बब्बर देखे हई। ओह से नीक हौ? [हमने बब्बर शेर देखा है। उससे अच्छा है?]

शाहजी—यह सिनेमा है, जानवर नहीं।

सिंहजी—ऊ कैसन होत है ? [वह कैसा होता है ?]

शाहजी—तमाशा होता है।

सिंहजी—कठपुतरी कऽ नाच ओच हौ ? [कटपुतली का नाच है ?]

शाहजी—नहीं।

सिंहजी—तब का औ ? नौटंकी हौ ? [तब क्या है ? नौटंकी है ?]

शाहजी—नहीं।

सिंहजी—तब भाँड़न कऽ खेल हौ ? [तब भाँड़ का खेल ?]

शाहजी—नहीं।

सिंहजी—रंडिन कऽ गावना है ? [रंडियों का गाना है ?]

शाहजी—नहीं।

सिंहजी—तब हौ का ? [तब है क्या ?]

शाहजी—चलने से मालूम होगा।

सिंहजी—तोहऊँ चलब ? [तुम भी चलोगे ?]

शाहजी—हाँ।

सिंहजी—तब चल ! संग हीं बेकूफ बनल जाई। [तब चलो। अगर बने तो, साथ ही बेवकूफ बना जायगा।]

शाहजी का एक सिनेमा हाल था।

वे दोनों महाशयों को लेकर वहाँ आये और ऊपर गद्देदार कुर्सियों पर इन्हें बैठा दिया। सिंहजी कचहरी के कागजात बगल में दबाये हुए थे और ५-७ सौ रुपये कमर में बाँधे हुए थे। शाहजी इन्हें बैठाकर बोले—आप लोग बैठिये, मैं अभी आता हूँ।

शाहजी चले गये। नीचे शोरगुल हो रहा था··आइसक्रीम, लेमन-सोडा, चने हैं, पान-बीड़ी !

खेल शुरू होने में देर हो गई। नीचे के दर्शक सीटी बजाने लगे कुत्ते बिल्ली की बोली बोलने लगे।

सिंहजी ने सुकुलजी से कहा—हे, चलऽ ! ई कौनो तमासा बा !

सुकुलजी बैठे ही रहे। इतने में बीच की रोशनी छोड़कर और सब बुझ गयीं।

सिंहजी ने घबरा कर कहा—उठऽ हो ? ई बनारस हौ ! इहाँ कै ठगी नाहीं जनतऽ। [उठो जी ! यह बनारस है। यहाँ की ठगी नहीं जानते।]

सुकुलजी बैठे ही रहे। सिंहजी ने कहा अरे उठऽ ! देख सरवा फाटक बन्द करत हौ।

अब सुकुलजी बोले—ऐसा नहीं हो सकता, चिथरू को आने दो।

सिंहजी बोले—चिथरू अंगूठी पहिरले रहल, तौन परायल ! अरे उठऽ ! अब सारे छोरी लेई हैं, तबै मनब !

इसी समय बीचवाली रोशनी भी बुझ गयी। फाटकों पर पर्दे खिंच गये।

सिंहजी सुकुलजी को खींचते हुए फाटक की ओर दौड़े और चिल्लाये अरे बप्पा ! छोरलस रे दादा ! अरे चिथरू ! फटकवा खोल सारे !

परदे पर खेल शुरू हो गया। इनके आस-पास के लोग खड़े होकर कुछ तो इन्हें बैठाने लगे, कुछ धक्के देकर आगे बढ़ाने लगे। दो-एक ने चपतबाजी भी की।

सिंहजी ने अपनी कमर कसकर पकड़ी और चिल्लाने लगे—छोरलस रे ! बचाव हो !! अरे बप्पा रे !!!

इसी समय शाहजी आये। उन्होंने टार्च जलाकर यह दृश्य देखा। सिंहजी उनसे लपट गये और चिल्लाने लगे—छोरत हौ रे चिथरुवा ! नटई टीपत रहल !! [छीनता है रे चिथरू ! गला टीपता था।]

हाल में मालिक के उपस्थित हो जाने के कारण सिंहजी की रक्षा हुई। शाहजी ने कहा जल्दी बैठ जाओ।

सिंहजी ने समझा, बैठ जाने से कदाचित् न लुटें सो चटसे कुर्सी पर बैठ गये। बगल की कुर्सी पर शाहजी बैठे। सिंहजी उन्हें कसकर पकड़े रहे। शाहजी ने परदे की ओर संकेत करके कहा—देखिये।

खेल हो रहा था। रामचन्द्रजी सुग्रीव से कह रहे थे कि बाली को एक ही बाण में मार डालूँगा। सिंहजी चकित हो गये। वे उठने की बात भूल गये और आँखें फाड़कर देखने लगे। रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिए एक ही बाण से सात ताल छेदे। सिंहजी खड़े हो गये और चिल्लाकर बोले रजारामचन्द्र की जै···

शाहजी ने उन्हें बैठाया। सिंहजी बीच बीच में चिल्लाते रहे, वाह ! वाह ! मार सारे के ! का बात हौ ? दौड़ऽ हनुमान् जी ! राजा रामचन्द्र······।

खेल समाप्त होने पर हाल रोशनी से जगमगा उठा। सिंहजी की आँखों से आँसू की धारा बह रही थी। उन्होंने शाहजी को गले लगाकर कहा—वाह रे बड़का भैया ! बनारस आइब सुफल कै देहल ! अब्बौं हियाँ भगवान् चल आवलन !

———

गवाह

ठाकुर झकझोर सिंह का मुकदमा पेश होनेवाला था। 'साहब' खाने गये थे। आने भर की देर थी।

ठाकुर साहब के कई गवाह 'बिगड़' चुके थे। आज उनका अन्तिम गवाह पेश होने वाला था, जो बिगड़ी को बनाने का यत्न करता, पर वह आया ही नहीं। ठाकुर साहब के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मुकदमा हार जाने पर भी विशेष कुछ न होता, पर हार जाना ठाकुर साहब अपना चरम अपमान समझते थे।

उनके वकील ने कहा—अब ठाकुर साहब !

ठाकुर साहब क्रोध और क्षोभ से भरे थे। उन्होंने कहा—जो होगा देखा जायगा। अब मैं क्या कर सकता हूँ।

तभी शिवमूरत ने कहा—मैं एक गवांह बताऊँ। सब ठीक हो जायगा, लेकिन रुपया खर्च होगा।

ठाकुर साहब बोले—क्या हाथी, घोड़ा लेगा ! कहाँ है ?

शिवमूरत उन्हें और वकील को लेकर चला। कचहरी से कुछ दूर, एक मकान के अहाते में, एक पेड़ के नीचे एक व्यक्ति बैठा था। उसकी

उम्र ६० और १०० के बीच में कुछ थी।

शिवमूरत ने कहा—मियाँ असगर! गवाही देनी है!

मियाँ असगर ने अपनी पीली-पीली मूँछों और सफेद दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहा—आओ भी! हाथी और पहलवान रखना और मियाँ असगर की गवाही करना एक बात है। किसी में बूता हो तो बात करे।

शिवमूरत बोले—हमारे ठाकुर साहब को पहचानते हो?

असगर मियाँ बोले—बहुत से ठाकुरों को पहचानते हैं।

वकील बोले—मियाँ क्या लोगे?

असगर—मुकदमा सुना नहीं, और क्या लोगे?

ठाकुर साहब बोले—बात यह है कि......

बीच ही में असगर बोले—हम मुकदमा ऐसे ही नहीं सुनते। पहले १२५) इधर रख दीजिये।

ठाकुर साहब ने १२५) देकर कहा—बात यह है......

असगर बोले—दो बातों में कहियेगा। किस्सा तो बेवकूफ वकीलों को ही सुनाइयेगा।

वकील साहब का चेहरा लाल हो गया। पर, वे कुछ बोले नहीं।

ठाकुर साहब ने कहा—गाँव का एक पेड़ हमने काट लिया। पेड़ के मालिक ने दावा किया है।

असगर ने कहा—ठीक।

वकील ने कहा—हमारे तीन गवाहों ने मंजूर कर लिया है कि ठाकुर साहब ने पेड़ काटा।

असगर बोले—ठीक! गाँव का नाम?

वकील—धरहरा।

असगर—ठाकुर साहब का नाम?

—झकझोर सिंह

—इनके बाप का नाम?

—मरोर सिंह।

—उनके बाप का?

—शहजोर सिंह।

—पेड़ कहाँ था?

—गाँव के बीच मे।

—गाँव की बस्ती?

—६०० घरों की।

—अब आप क्या चाहते हैं?

वकील कुछ सोचकर बोले—क्या कहूँ! मुकदमा तो हार गया।

असगर मियाँ बोले—तुम लोग क्यों वकील होते हो; जब दिमाग में गोबर भरा है!

वकील ने क्रुद्ध होकर कहा—बहुत सुना मियाँ! बस करो।

असगर अली बोले—बच्चे हो। हाँ, ठाकुर साहब, मैं २४००) लूँगा। मुकदमा खारिज हो जायगा।

वकील साहब बोले—अफीम खाकर बकते हो मियाँ!

असगर बोले—नकद २४००) दे दीजिये। या तशरीफ ले जाइये। मुकदमा आज ही खारिज हो जायगा।

वकील बोले—अगर न हुआ!

—तो बाहर निकलते ही अपना रुपया ले लेना।

ठाकुर साहब ने २४००) गिन दिये असगर अली ने उन्हें भीतरी जेब में रखा और उठ खड़े हुए। कचहरी के भीतर आते तक वे ठाकुर साहब से पूछते रहे - कुआँ किधर है, उत्तर की तरफ क्या है, मन्दिर किसका है, इत्यादि।

* * *

मुकदमा शुरू हो गया। असगर अली गवाह के कटघरे में खड़े हुए। शपथ-ग्रहण के बाद उन्होंने जज से कहा—हुजूर! बुड्ढा आदमी हूँ। देर तक खड़ा नहीं हो सकता। खिलाफ पार्टी के वकील साहब मुख्तसर में जिरह कर लेते तो अच्छा होता।

खिलाफ पार्टी के वकील ने पूछा—आप ठाकुर झकझोर सिंह को कब से जानते हैं!

असगर अलो बोले—इन्हें तो मैं कल से जानता हूँ। हाँ, इनके बाप मरोर सिंह को थोड़ा बहुत और इनके दादा शहजोर सिंह को अच्छी तरह जानता हूँ। खुदा उन्हें जन्नत बख्शे।

वकील—ठाकुर झकझोर सिंह ने ठाकुर सुमेर सिंह का पेड़ काट लिया, यह इन्होंने कैसा काम किया?

असगर—बहुत बुरा।

वकील—इन्हें न काटना चाहिये था?

—कभी नहीं।

—आपने पेड़ देखा था?

—जी हाँ। मैं उसी गाँव का रहने वाला हूँ। अपनी जवानी में शहर

में आ बसा।

—पेड़ कितना बड़ा था?

—अब क्या अर्ज करूँ! जब मैं वहाँ से आया, तब वह इतना बड़ा था कि उसके नीचे हजार दो हजार आदमी बैठ सकते थे।

इन उत्तरों से खिलाफ पार्टी अत्यंत प्रसन्न थी और ठाकुर झकझोर सिंह क्रोध में उफन रहे थे।

वकील—हजार दो हजार आदमी?

—जी हाँ। गाँव के बीच में पेड़ था। गाँव भर के जानवर उसके नीचे बैठते थे। दो चार बरात एक साथ उसके नीचे टिक जाती थीं। पंचायतें हुआ करती थीं।

वकील—आपके खयाल से उसका कम से कम क्या दाम होना चाहिये।

असगर अली—साहब, यह पूछ कर क्या कीजियेगा!

—नहीं, नहीं। बताइये।

—तो रख लीजिये चार आने।

—क्या? चार आने? जिस पेड़ के नीचे हजारों आदमी बैठ सकते थे?

—जी हाँ। आपको कम लगे तो आठ आने रख लीजिए।

वकील ने जज से कहा—हुजूर? सुना आपने!

जज ने पूछा—यह आप कैसी बात कहते हैं?

असगर अली बोले—

हुजूर, मेरी जवानी तक पेड़ वैसा ही था, जैसा मैं कह रहा हूँ। पर, बाद गाँव में कभी बरात आई और ईंधन की जरूरत हुइ तो लोग उसी

पेड़ में से काट लेते थे, जानवरों को खिलाना हुआ तो एक डाल काट कर आगे फेंक दी। चार बरस पहले मैं वहाँ गया तो देखा कि पेड़ की जगह एक ठूंठ खड़ा है। साल भर पहले मैं गया तो देखा कि हाथ भर का एक खूंटा-सा वहाँ है और उसमें एक गाय बँधी है। देख कर हुज़ूर, रोना आ गया। तो, वही खूंटा हुज़ूर! झकझोर सिंह ने काट लिया है। उसी के मैंने चार आने लगाये हैं। हुज़ूर कम समझें तो १) लगा दें। और हुज़ूर! झकझोर मुझे बहुत मानता है, मुझे उसका बाप ही समझिये। आपका हुक्म हो तो मैं उससे वैसे दस-पाँच खूंटे हाजिर करा दूँ।

थोड़ी देर बाद मुदकमा खारिज हो गया।

असगर अली ने बाहर आकर झकझोर सिंह के वकील से कहा—रात को मलाई खाया करो बेटे! दिमाग को कुछ तरी पहुँचे। आदाब!

तकल्लुफ

स्त्री-रोगों तथा प्रसूति-तंत्र के एक विख्यात डाक्टर एक नवाब साहब की पुत्री को देखने गये, जिसे बच्चा होनेवाला था ।

नवाब साहब ने कहा—इस नाचीज़ पर आपने जो मेहरबानी की है, उसका शुक्रिया कैसे अदा करूं, समझ में नहीं आता ।

डाक्टर बोले—मुझे फ़ीस लेनी है, मरीज़ देखना है। इसमें मेहरबानी क्या !

नवाब साहब बोले—आप न जाने क्या-क्या जरूरी काम छोड़ कर तशरीफ लाये होंगे। तशरीफ़ रखिये । शरबत मँगाने का हुक्म दीजिए।

डाक्टर ने कहा—पहले मरीज़ दिखलाइये ।

नवाब साहब ने कहा—उसका हाल सुन लीजिए। खुदा की मेहरबानी से उसे बच्चा होनेवाला है। वक्त बीत गया, लेकिन हो नहीं रहा है ।

डाक्टर ने पूछा—वक्त बीत गया ?

नवाब साहब बोले—जी हाँ ! मरीज़ की माँ के खयाल से यह ग्यारहवाँ महीना है ।

डाक्टर से पूछा—ठीक मालूम है ? नवाब साहब ने कहा—खयाल की बात है। मरीज़ की माँ का खयाल अक्सर सही होता है।

डाक्टर ने पूछा—इस वक्त क्या हाल है ?

नवाब साहब बोले—आठ दिन हो गये, दर्द हो रहा है। जानिये कि तावीज़, भभूत, फकीरी दुआ, कोई चीज़ काम नहीं कर रही है।

डाक्टर ने कहा—तो पहले मैं मरीज़ देखूंगा

नवाब साहब ने इसकी व्यवस्था की। डाक्टर मरीज़ देखकर आये। नवाब साहब ने कहा—तशरीफ रखिये। ज़रा आराम कीजिये, तब हाल बतलाइयेगा।

डाक्टर ने कहा—जनाब, मरीज़ की हालत अच्छी नहीं। आज ही बच्चा होना चाहिये।

नवाब साहब बोले—आपका यह खयाल है तो जरूर होना चाहिये। लेकिन किया क्या जाय ?

डाक्टर बोले—मैं दवा खिलाऊंगा। सब ठीक हो जायगा।

नवाब साहब ने कहा—तो फिर क्या फ़िक्र है। आप दवा इनायत कीजिये।

डाक्टर बोले—लेकिन एक शर्त है। आप की बेटी को हिन्दू बनना पड़ेगा। तभी बच्चा होगा।

नवाब साहब घबराकर बोले—हिंदू ! इससे और बच्चा होने से क्या वास्ता ?

डाक्टर ने कहा—अगर मेरी दवा करनी है तो उस मरीज़ को हिंदू बनाना ही होगा।

नवाब साहब बोले—मान लीजिये कि मुझे कोई एतराज न हो; लेकिन दामाद से बिना पूछे ऐसा कैसे किया जा सकता है!

डाक्टर बोले—तो फिर आपको जो करना हो कीजिये।

नवाब साहब बोले—हम तो जो कुछ कर सकते थे, कर चुके। साहब, आप मेरी दिक्कत पर गौर फरमाइये।

डाक्टर ने कहा—बच्चा होते ही मरीज को फिर मुसलमान बना लीजियेगा।

नवाब साहब ने प्रसन्न होकर कहा—बहुत अच्छा! खुदा आपको बरकत दे।

डाक्टर साहब के कथनानुसार मरीज को हिन्दू बनाया गया। तब डाक्टर साहब ने दवा दी और उसके आधे घण्टे बाद ही जनानखाने से खबर आई कि दो बच्चे हुए हैं।

नवाब साहब ने डाक्टर को बहुत कुछ इनाम दिया और डाक्टर ने उन्हें बधाई और धन्यवाद किया। बातें ही बातों में नवाब साहब ने पूछा—गुस्ताखी मुआफ हो तो एक बात पूछूं। क्या आपकी दवा हिन्दुओं पर ही कारगार होती है?

डाक्टर बोले—जी नहीं। लेकिन यहाँ बात कुछ और थी। आपके और आपके दामाद के खानदान के 'तकल्लुफ' का पूरा असर उन बच्चों पर हो चुका था। दोनों बच्चे इसी बात पर रुके हुए थे कि पहले कौन पैदा हो। मरीज के हिन्दू होते ही तकल्लुफ का असर जाता रहा और दोनों झट से पैदा हो गये। अब आप मरीज को शौक से मुसलमान बना लें।

आकाश वृति

प्रातःकाल हो चुका था। घाटों पर गधे दिखाई दे रहे थे। गलियों में सौंड़ों का स्वच्छन्द विचरण प्रारम्भ हो चुका था। सड़कों पर बाबू-टाइप लोग मुँह में दातौन लिए गङ्गाजी की ओर जाते देख पड़ते थे।

अन्नपूर्णा के मन्दिर के दालान पर ब्राह्मणों ने कब्जा कर लिया था। तरह-तरह के आकार प्रकार और वय के ब्राह्मण बैठे सतशती का पाठ कर रहे थे। गणेशजी की मूर्ति के पास, अर्थात् औरों से जरा हट कर, एक ब्राह्मणदेव विराज रहे थे। वे कोई ५५ वर्ष के थे। उनके केश प्रायः पक चुके थे, दाढ़ी भी थी। उनके मस्तक पर, पलकों के ऊपर और नीचे, कान के बाहर, हाथों पर तथा हृदय पर भस्म लगी हुई थी। वे मोटे रुद्राक्ष की माला पहने हुए थे। उनका माथा कुछ संकीर्ण तथा सलवटों से भारा था। दोनों भौहें घनी और बीच से उठी-उठी-सी थीं। उनकी नासिका ऊपर से नीचे की ओर दबती उठती चली आई थी और एक दम नीचे आकर पसर गई थी। उनके ओष्ठ कुछ मोटे थे। उनके नेत्र कुछ छोटे, सतेज और चंचल थे।

वे भी पाठ कर रहे थे—या देवी सर्वभूतेषु...।'' 'या' पर जोर देने से वह अक्षर सुनने में वैसा ही लगाता था, जैसे मुसलमान पहलवान के मुँह से प्रतिपक्षी से लड़ने के लिए अखाड़े में उतरते समय कहे 'या अली' का 'या' लगता है। 'षु' पर जोर देने से वह 'षू' जैसा सुन पड़ता था।

एक वृद्धा आकर उनके पास रुकी। ब्रह्मदेव ने आचमन करके पूछा—अच्छी हो !

—हाँ महाराज !

—कई दिन दिखाई नहीं पड़ी !

—शरीर ठीक नहीं था। आज आपका न्यौता है।

—अच्छा, अच्छा, कै बजे ?

—११ बजे।

—अच्छा, सुखी रहो।

वृद्धा चली गई। फिर पाठ आरम्भ हुआ। 'लज्जा रूपेण संस्थिता' कहते-कहते दूसरी अधेड़ स्त्री वहाँ रुकी। ब्रह्मदेव ने फिर आचमन किया और प्रश्न किया—

– दर्शन हो गये बाई ?

—हाँ।

—फालगुन मास बीत रह्यो है। अबकी भी नहीं करायो ! माघ सुदी नौमी को सदा कराती थी बाई !

—मैं पञ्चकोसी गई थी। आज न्यौतो है।

—अच्छा, अच्छा। दो बजे आऊँगा। आज एक भक्त का पाठ भी

करना है।

—अच्छा, जल्दी आइयो।

फिर 'या देवी' प्रारम्भ हुआ। थोड़ी देर में फिर एक वृद्धा वहाँ रुकी। ब्रह्मदेव ने पुनः आचमन किया और कहा—कई दिन में दीखी हो। तीन बरस हो गये कम्बल दिये। अब उससे सरदी नहीं जाती।

—अच्छा, देखा जायगा। अब तो जाड़ा बीत गया।

—हाँ। एक सिल्क दे दो। कम्बल से दाम भी कम लगेगा।

—देखो!

—देखना क्या है? देने की इंछा (इच्छा) चाहिये।

—अच्छा। आज न्यौता है।

—रात को आऊँगा। दिन भर पाठ करना है।

—दिन भर?

—हाँ शरीर कुछ ढीला है। सो, पाठ ही करूँगा। सात बजे आऊँगा। हाँ बुधराम की बेटी देस से आई कि नहीं?

—अभी नहीं। क्यों?

—कुछ नहीं। एक लोटा देने को कहा था।

—आवेगी तो देगी महाराज!

—खुसी हो तो दे, नहीं तो मेरा क्या किसी पर करज (कर्ज) है?

—अच्छा अब चलूँ महाराज।

—जा, जा, मंगल, मंगल। 'या देवी सर्वभूतेषु'...।

थोड़ी देर बाद ब्रह्मदेव जी को तीन स्त्रियाँ आती दिखाई पड़ीं। तीनों

ही अपरचित और मन्दिर में नई थीं। उनमें दो वृद्धा थीं, एक कोई २६-२७ वर्ष की थी। अन्तिम के मुख पर शोक तथा जीवन के प्रति उपेक्षा स्पष्ट थी।

वे ब्रह्मदेवजी के सामने से जाने लगीं तो उन्होंने जोर से पूछा—कौन गार्गी बाई ?

तीनों स्त्रियाँ रुक गईं। एक वृद्धा ने पूछा—क्या है महाराज ?

महाराज ने कम उम्र की स्त्री को देखकर पूछा—गार्गी बाई है क्या ?

दूसरी वृद्धा ने कहा नहीं सुलोचना बाई है।

ब्रह्मदेव ने आँखें मल कर कहा—८८ बरस की उमर भई। कम सूझने लगा। गार्गी भी ऐसी ही है। किस गाँव की हो ?

एक वृद्धा ने गाँव का नाम बताया।

ब्रह्मदेव चौंककर बोले—नत्थमल की बेटी है क्या ?

दूसरी वृद्धा ने कहा—नहीं, जमनादत्त की।

ब्रह्मदेव झटपट उठकर चबूतरे से नीचे उतर आये और सुलोचना बाई के सिर पर हाथ फेर कर बोले—जीती रहो। जमनादत्त जी राजी हैं।

एक वृद्धा बोली—तीन महीने पहिले कौंसी—(काशी) जी से गये। वहीं शरीर बरत गया (मर गये)।

ब्रह्मदेव गिर-से पड़े। तब बैठे ही बैठे अंगोछे से आँखें पोंछने लगे। फिर उठ कर भहराई अवाज में बोले—जमनादत्त ! आहा हा हा ! भाई जैसा मानता था। रोज मिलने आवे। मैं बिमार होता तो कितनी सेवा

करता। मेरे साथ पचकोसी गया था। आहा कलयुग में ऐसे आदमी कहाँ देवता था। अरे बाई! तू और मैं तो आज अनाथ हो गये।

सुलोचना बाई की आँखों से आँसू टपक रहे थे। ब्रह्मदेव ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—रो मत। तेरा गरीब चाचा जीता है। (वृद्ध से) बाई के लड़के-बच्चे?

वृद्धा ने कहा—कोई नहीं। दो महीने हुए बिचारी बिधवा हो गई।

ब्रह्मदेव फिर मूर्छित-से हो गये। सम्हल कर बोले—आ, बैठ जा बेटी। ब्रह्मदेव अपने आसन पर विराजे। तीनों स्त्रियाँ भी वहाँ बैठ गईं।

ब्रह्मदेव बोले—तो काशी-बास करने आई है। अच्छा है। हाँ और क्या। कोई चिन्ता नहीं, मैं तो हूँ!

ब्रह्मदेव ने टेंट से कुछ नोट और रुपये निकाल कर उनमें से २२ सुलोचना के सामने रखे और कहा—बेटी मैंने तेरे बाप से लिये थे, भाग्य से तू मिल गई, तू ले ले। हाँ, हाँ, ले ले! मुझे बहुत फिकर थी कि कहीं मर जाऊँ तो करज सिर पर रह जाय। माँ अन्नपूरणा!

सुलोचना ने कहा—चाचा, तुम रक्खो।

ब्रह्मदेव ने भीत होकर कहा—ना बेटी! यह बात नहीं। करज देना ही चाहिये। आहा! तेरा बाप देवता था। देश जाने के दिन यहीं पर, मन्दिर में कितनी देर बात चीत हुई! कहने लगा—देख भाई! अन्नपूरणा के सामने कहता हूँ, देस से तेरे लिए गाय लाऊँगा और न ला सका तो यहीं खरीद दूँगा। मैंने कहा—मुझे गाय क्या करनी है। वह बोला—अब तो अन्नपूरणा के सामने कह दिया। आहा! कौन जानता था कि बिचारा लौटेगा ही नहीं

सुलोचना ने चौंक कर कहा—बापू अन्नपूरणा के सामने गाय देने को कह गये थे।

—हाँ बेटी! लेकिन वह देता तो मैं क्या करता!

सुलोचना ने दृढ़ स्वर में कहा—मैं गाय दूँगी।

ब्रह्मदेव बोले—बेटी! अपना पेट नहीं चलता, गाय का क्या होगा।

सुलोचना बोली—जो हो, गाय तो लेनी पड़ेगी। पसन्द की गाय देख लो।

ब्रह्मदेव बोले—देख बेटी मुझे न समय है, न लेने की इच्छा!

सुलोचना ने पूछा—गाय कितने में आवेगी?

ब्रह्मदेव बोले—मैं क्या जानूँ!

तो पता लगाओ। मैं हाथ जोड़ती हूं, मेरे बाप की बात पूरी हो जाने दो।

ब्रह्मदेव ने बहुत ही अनिच्छा से, लम्बी साँस लेकर कहा—अच्छा, तो दो चार दिन में गाय ठीक करूँगा।

सुलोचना ने कहा—हाँ अच्छी गाय हो, दूधवाली।

ब्रह्मदेव तब बोले—अच्छा बेटी, जा मुझे भी पाठ करना है।

सुलोचना ने पूछा—यहीं मिलोगे?

हाँ, यहाँ बैठते ५० बरस हो गये।

सुलोचना चली गई। तब पाठ करनेवालों में से एक वृद्ध उठकर इन ब्रह्मदेव के पास आ बैठा। दोनों में बहुत धीरे धीरे बात-चीत होने लगी।

वृद्ध—कौन थी?

ब्रह्मदेव—सुलोचना बाई।

वृद्ध—नई आई है।

ब्रह्मदेव—हाँ।

वृद्ध—कहाँ की है?

ब्रह्मदेव—गाँव का नाम तो भूल गया।

वृद्ध—इसका कौन रिश्तेदार तुम्हारा परिचित था?

ब्रह्मदेव—इसका बाप, जिसका मैंने कभी नाम नहीं सुना था।

वृद्ध—तुम पूरे लग्घड़ हो। कुछ काम बना?

ब्रह्मदेव—एक गाय देगी। साथ में उसकी साल भरकी खुराक भी लेनी हैं। देगी, जायेगी कहाँ!

वृद्ध—और कोई पटा?

ब्रह्मदव—बोहनी अच्छी हुई है, फिर देखा जायगा।

तभी वृद्ध उठ कर अपने आसन की ओर लपके। वहाँ एक वृद्धा खड़ी उनका आसरा देख रही थी!

*

सड़क का साँड़

किसी नगर में एक महापण्डित रहते थे। उनके एक पुत्र रत्न था। लोगों को उसकी हर एक बात पर अचंभा होता, अतः मुहल्ले वाले उस पुत्र रत्न को 'अचंभे का बच्चा' कहने लगे।

अचंभे का बच्चा जब ६ वर्ष का हुआ, महापण्डित ने शुभ लग्न, नक्षत्र, योग, घड़ी, पल आदि विचार कर उसका अक्षरारम्भ कराया।

तीन रुपये मासिक पर एक वयोबृद्ध मास्टर, सम्पादक सम्राट् पण्डित लक्ष्मण प्रसाद भार्गव द्वारा सम्पादित एवं पण्डित रामलाल अग्निहोत्री विरचित, पूरे प्रान्त की कक्षा १ के लिए राष्ट्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत राष्ट्रीय बेसिक प्राइमर बच्चे को रटाने के लिए रखे गये।

जब एक हफ्ता तक बच्चा बेसिक प्राइमर घोट चुका, तो महापंडित ने सोचा देखूँ तो बच्चा ने कितना सीख लिया।

महापण्डित ने बच्चे की पुस्तक उठाते हुए पूछा—तुमने कितना पढ़ डाला, बेटा ?

बच्चे ने महापण्डित की मूँछों की ओर हाथ लपका कर कहा—सब कुछ।

महापण्डित प्रसन्न हो गये। पुस्तक खोल कर बच्चे का ज्ञान नापने लगे—

—यह कौन अक्षर है ?

—'अ'।

—'अ' से ?

—अनार से रस भरा गिलास !

तोड़ रहे बापू उपवास !!

—वाह बेटे ! और यह क्या है ?

—'इ'।

—'इ' से ?

इरविन सुना कि बापू आये !

खुद ही फाटक ओर सिधाये !

—ओ जियो बेटा, जियो ! और यह क्या ?

—'त'

—'त' से ?

—तलवारों की सैनिक छाया !

में है वीर जवाहर आया !!

—शाबाश बेटे, शाबाश !

महापण्डित प्रसन्नता से फूलकर कुप्पा हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि बच्चा बहुत होनहार है। मुहल्ले के एक - एक घर में बच्चे की प्रखर बुद्धि की चरचा होने लगी।

महापण्डित सोचने लगे, बच्चे को वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा देनी चाहिये। किसी भाषण में उन्होंने कभी सुना था—देश के असंख्य शिक्षित नवयुवकों का जीवन असफल रहने का कारण यह होता है कि बाप के सनक छूट-बेटा वकील बने, और ठोंकपीट कर बेटे को वकालत पास करा ही दी, भले बेटा वकालत करने का एक भी गुण न रखता हो। यदि बच्चे की रुचि संगीत में है तो उसे संगीत का ही आचार्य बनाने के उद्देश्य से शिक्षा देनी चाहिये। यदि बच्चे का जी तोड़ फोड़ में अधिक लगता है तो उसे इंजीनियर बनाना चाहिये।

महापण्डित ने सोचा पहले बच्चे की रुचियाँ जानकर यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वह क्या बनेगा, फिर उसके अनुसार उसे शिक्षा देनी चाहिये।

बस एक दिन उन्होंने मुहल्ले भर के पण्डितों को अपने यहाँ जुटाया, और उनकी सलाह से एक कोठरी में निम्नलिखित वस्तुएँ रख दीं—गीता, रुद्राक्ष की माला, गांधी टोपी, एक रुपया, सुरैय्या की तस्वीर और एक प्याले में शराब।

और फिर बच्चे से बोले—बेटे! उस कोठरी के भीतर जाओ और जो चीज तुम्हें पसन्द हो, उसे उठा लाओ!

बच्चा कोठरी के भीतर गया। पहले उसने शराब की एक चुस्की मारी, फिर सिर पर गांधी टोपी रखी, गले में रुद्राक्ष की माला डाली, बगल में गीता दाबी, जेब में रुपया रखा और छाती से सुरैया की तस्वीर चिपकाये वह बाहर आया।

१२

पण्डित समुदाय बहुत चक्कर में पड़ गया। अचंभे का बच्चा क्या बनेगा—यह किसी की समझ में नहीं आया। बहुत देर तक परामर्श होता रहा और अन्त में सब पण्डितों ने एक मत होकर यह निर्णय किया कि अचंभे का बच्चा नेता बनेगा। अतः उसे आगे कोई पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं, देश के नाम पर वह सड़क पर साँड़ की तरह खुला छोड़ दिया जाय।

हड़ताल

श्रीमान् सुन्दर देव ने कहा—हड़ताल किये बिना काम न चलेगा।

रामलाल ने 'लघु पंचाशिका' से दृष्टि हटाकर कहा—ठीक भाषण किया! करना ही श्रेयकर है।

गोपीराम बोले—एक बार तो खाने को देते हैं, वह भी पेट भर कर नहीं।

निरञ्जन—सब साले मुनीम की बदमाशी है। चेत्र का सब माल खा जाता है।

सुन्दर देव—ब्राह्मणों का पेट काटता है, साले को कुष्ट होगा, कुष्ट!

गोपीराम—सेठों का दोष है। अरे, कभी आकर झांकते भी नहीं! एक दुष्ट को मुनीम बना दिया, वह साला सब खा जाता है।

निरञ्जन—बस हड़ताल करो! सेठों को मालूम होगा तो दुष्ट ठीक हो जायगा।

रामलाल—परन्तु यह हड़ताल गांधी की चलाई है—सनातन धर्म के शत्रु की। उसको हम ग्रहण कैसे करें?

सुन्दर देव—अच्छी बात किसी की भी हो, ग्रहण करना चाहिये।

गोपीराम—बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्। स्त्री-रत्नं दुष्कुलादपि।

निरञ्जन—फल उत्तम होगा। देखो न! डाकियों ने हड़ताल की, अँगरेज हार गये।

रामलाल—फिर मुनीम की क्या औकात है?

सुन्दर देव—हम लोगों को करना क्या होगा?

गोपीराम—नहीं खायेंगे।

सुन्दर देव—अर्थात् अनशन?

गोपीराम—नहीं। वहाँ नहीं खायँगे। जब पत्तल पर दाल-भात आ जाय, हम लोग उठ खड़े होंगे; कहेंगे—'हड़ताल! हम नहीं खाते। पेट भर भोजन दो तो खायँगे।'

निरञ्जन—यदि मुनीम और न दे?

गोपीराम—हम छोड़ कर चले जायंगे। उतना अन्न नष्ट हो जायगा।

निरञ्जन—क्यों?

गोपीराम—पत्तल छोड़कर उठ आने के बाद उसे और कौन ब्राह्मण खायगा?

सुन्दर देव—चाण्डाल खिलाता भी तो है एक बजे दिन में, तब तक पेट 'सर्वाभ्रकूलेषु कषः' सूत्र का उदाहरण हो जाता है।

गोपीराम—अर्थात्!

सुन्दर देव—अर्थात् उसमें वायु दौड़ने लगती है, वह भीतर के सब किनारों को गड़-गड़ शब्दों के साथ उलट देती है; उदर फूल जाता है, और पतला दस्त होने के कारण वह अभ्रंकष—मेत्र भी हो जाता है।

निरञ्जन—तो यह प्रयोग सफल होगा न?

अवश्य होगा। हड़ताल बहुत उत्तम वस्तु है। मुनीम के लिए वज्र समझो!

नहीं सुदर्शन चक्र, जिसके मारे दुर्वासाजी तीनों लोकों में घूम आये।

गोपीराम—इस नीच, ब्रह्मघ्न को भी हमारी ही शरण में आना पड़ेगा।

हम दण्ड लेंगे। एक-एक धोती, अँगोछा दे और पितृपक्ष भर अपने यहाँ हमें पायस भक्षण करावे।

ठीक कहा। यही निश्चित रहा। देख सुन्दर देव, केवल अँगोछा लेकर प्रसन्न मत हो जाता; तू महा लालची है।

× × × ×

दूसरे दिन—

हड़ताल, हड़ताल! हम नहीं खाते। यह मुनीम नीच है, दुरात्मा है, ब्राह्मणांश खाता है, इसकी २१ पीढ़ी नरक में जायँगी। हड़ताल! सब खा जाता है।

क्षेत्र के नौकर-चाकर पहले घबराये, फिर मुस्कराये, अन्त में हँसने लगे। मुनीमजी आये, कहा—हड़ताल! कँगले बहुत मिलेंगे। बिदारथी (विद्यार्थी) साले भी हड़ताल करने लगे?

सुन्दर देव ने चीत्कार कर कहा—ऐं! ब्राह्मणों को साला गाली देता है! मारो साले को!

सब हड़ताली मुनीमजी की ओर दौड़े। मुनीमजी भागे, पीछे से मुक्के पड़ने लगे। सीढ़ी पर रपट कर मुनीमजी गड़गड़ाते हुए एक मञ्जिल

चले गये। सिर फूट गया, ३-४ दाँत टूट गये, पीठ में धसक पड़ गयी, घुटने और कुहनी छिल गयी।

हड़ताली मुनीमजी के शरीर पर पाँव रखते निकल भागे।

× × × ×

मुनीमजी ने पुलिस में रिपोर्ट की। हड़तालियों का पता न चला। पुलिस ने भी तत्परता न दिखाई। विद्यार्थियों का झगड़ा सुनते ही उसका उत्साह ठण्ढा पड़ गया।

४-५ दिनों बाद मुनीमजी को सेठजी का पत्र मिला। उसके कुछ वाक्य ये हैं—

'हमारे लेखे बिदार्थी और कँगलों में यही फर्क है कि एक पढ़ता है, दूसरा नहीं। आजकल तुम कँगलों को खिला रहे हो, इसमें हमें इसलिए आपत्ति नहीं थी। बाप-दादों का छेतर (क्षेत्र) चलता तो अच्छा ही था। तुम चिट्ठी पाते ही वहाँ का सब सामान (बरतन अन्न वगैरह) बेचकर पहली गाड़ी से चले आओ। यहाँ हम तुम्हें कँगलों को खिलाने से अच्छा काम बतावेंगे।'

उस समय हड़ताली—वरुणा नदी के किनारे, एक बगीचे में अमरूद खा रहे थे और इस बात पर विचार कर रहे थे कि मुनीम साले को कितनी चोट लगी और किसने ज्यादा मारा था।

चावलका-विटामिन

कल शाम को जी में आया कि प्रदर्शिनी में चलकर पाण्डेय बेचन-शर्मा 'उग्र' की कहानी ही सुन ली जाय, टाउनहाल कौन काले कोसों है ! पर प्रदर्शिनी की बत्तमीजी की ओर ध्यान गया तो दिल बैठ गया, उसे बढ़ावा दिया कि ऐसे लेखक फिर कब-कब आते हैं ! सो, जूता पहना और चल दिये। बिसेशरगंज होकर जा रहे थे कि एक दूकान पर नजर पड़ी और चावल, हाँ हाँ, चावल दिखाई पड़ा। अपने राम उसी तेजी से बढ़े, जिस तेजी से भगवान् गजेन्द्रमोक्ष करने बढ़े होंगे। चावल ! दिखाई पड़ा !! जाकर बहुत देर तक आँखें मल-मलकर देखते रहे। इधर कुछ तकदीर बिगड़ी हुई है, बनी बिगड़ जाती है। एका-एक आँखों पर भरोसा नहीं हुआ। फिर बानगी के लिए हाथ में उठाया। दूकानदार से पूछा—बानगी के लिए हैं कि बेचने के लिए? उसने कहा बेचने के लिए, तो बाछें खिल गयीं। झट धोती पसार दी। कहा—देदो जितना दे सको। पर वह जालिम एक रुपये के ही देने को तैयार हुआ। बहुत कुछ पुचकारा, बाबू-भैया कहा, पर मेरा यार टस से मस न हुआ। झख मारकर एक रुपये का ही लिया। पूरा सवा सेर मिला

कि नहीं, दूकानदार का हाथ जाने! कुछ डाँडी मारने का अंदेशा हुआ, पर जीभ न हिलाई, कहीं यह भी न दे! लेकर सीना निकाले हुए घर आये। रास्ते में, खुशी में दो-एक भले आदमियों को पान भी खिलाया। श्रीमती से सड़क से ही चीख कर कहा—चावल ले जाओ। श्रीमतीजी कंघी-चोटी किनारे रख दौड़ी चली आयीं।

थाली में चावल रखा तो आँखें फैल गयीं। लाल-लाल कीड़े किल-बिला रहे थे। दिल बाग-बाग हो गया। सोचा—सवा सेर चावल और ये कीड़े मुफ्त! एक बार सोचा कि इन्हें अलग कर दूकानदार को लौटा आवें। चावल में मिलाने को। लेकिन यह भी खयाल हुआ कि कहीं ये चावल के जीते-जागते विटामिन न हों। और यही हो सकता है। सरकार ने दूकानदार को कहला दिया होगा कि चावल के विटामिन भी ग्राहकों को देना भूलाना मत। दूकानदार भी दरियादिल दीखता है! कितनी उदारता से सवा सेर चावल में कोई सवा लाख दे दिये हैं।

पर श्रीमतीजी तन गयी—आपको ही मुबारक रहें विटामिन! इन्हें अलग कर लीजिये।

हमने देखा, यह नयी आफत सिर पड़ा चाहती है। झट कहा—कोई बात नहीं, एक दिन विटामिन न सही। तो इन्हें साफ करके बना डालो।

किस युक्ति से श्रीमतीजी ने उन्हें अलग किया यह तो पता नहीं, खाने बैठे तो पूरा विश्वास नहीं हुआ कि सब विटामिन निकल गया है।

जबान पर रखा तो अजीब सा! पूछा—चावल है न! श्रीमतीजी ने तिनक कर कहा—वही है, जो आप लाये थे।

आगे पूछने की हिम्मत न पड़ी। बिना मुँह चलाये गले से नीचे उतार गये। फिर किसी मौके पर पूछेंगे कि दिल्लगी तो नहीं की थी! सो जाने के बाद अफसोस होता रहा कि कहानी सुनने नहीं गये।

अधूरी कहानी

वर्षा काल, छुट्टी का दिन। चार बज गया। रास्ते में कीचड़, सिर पर बादल, बीच-बीच में वृष्टि। बाहर निकलने की इच्छा न हुई। अखबार लेकर पन्ने उलटने लगा।

अन्य मनस्क एक था। जरा पहले जटिल ब्रह्मचारी आये थे। ब्रह्म के संबंध में ऐसी-एसी बातें सुना गये थे कि अब भी उनसे पीछा नहीं छुड़ा पाया था।

ब्रह्मचारीजी बंगाली, पैदल पंजाब पहुँच गये हैं। कब, सो कोई नहीं कह सकता। कहते थे—तब रणजीत सिंह थे। दीर्घाकृति, सिर पर बड़के दूध से लपेटी जटा का मुकुट, उसे लेकर साढ़े सात फुट होंगे। हाथ जैसे पिटा लोहा। गेरुआ पहने। कहते थे—जो देखते हो कुछ नहीं है। सब माया है। राजर्षि जनक ने इसे समझा था। तभी तो उस समय खून करने से फांसी नहीं होती थी। विधर्मियों ने आकर ज्ञानियों की आफ़त बढ़ा दी।

इसके बाद ही उच्च स्वर में 'तारा' कह कर गंभीर सांस! इन्हीं ब्रह्मचारीजी की बातें मगज में दखल जमाये बैठी थीं।

तभी एक छाते में आशूबाबू और हरेन बाबू आये, भींगने में आधा-आधा हिस्सा किये।

छाता बन्द करते-करते हरेन बाबू ने कहा—बापरे! सारा दिन क्या घर में बैठे रहा जा सकता है! वे तो अब प्रिया नहीं हैं, परिवार हैं अर्थात् दुर्निवार। उस पर कच्चे बच्चों के उत्पात के मारे पलक बंद करने का उपाय कहाँ! जो मशीन पर या रेल में काम करते हों, वेही सह सकते हैं। एक साथ स्त्री-पुत्र! बापरे!! साले पंजाब में पैदा हुए हैं, क्या आवाज है! एक-एक पांचजन्य!!! और वह यंत्र बजा कि युद्ध?

—हुआ क्या?

– अरे भाई! स्त्री कहती है—'एक दिन नहीं रह सकते और सम्हाल नहीं सकते?' अर्थात् ६ दिन नौकरी सम्हालूँ और छुट्टी के दिन लड़के सम्हलूं। खैर वह भी सही। होता भी यही था। यह आदमी कबतक बरदाश्त करे? मीठी-मीठी बातों से शांत करके आंख बंद की कि आंख में उँगली घुसेड़ी! सो निकल पड़ा।

—अच्छा किया।

वे अपने से मानों कहने लगे—अच्छा तो जो किया है, सो मैं ही जानता हूँ।

आशूबाबू की ओर देखकर मैंने कहा—आपको भी कुछ कहना है!

वे दो बार में हँसे।

हरेनबाबू ने कहा—वे क्या कहेंगे!

—क्यों? उनके तो छ हैं।

—उन्हें बुद्धि पहले मिल गयी थी। इन सब बातों का अनुमान करके पहले ही सब बातों का उपाय कर लिया था। दिन रात वज्राघात हो रहा है, यह सोच लेने से व्रज-निर्घोष झिल्ली की आवाज़ जैसा मालूम होने लगता है और सह जाता है। आशुबाबू घर गये हैं कि नहीं ? राम रावण के युद्ध में जो बाजे बजते थे, उनका नमूना मौजूद है। उनके लड़कों के नाम हैं—तुरी, भेरी, दमामा, दगड़ा, नकाड़ा, काड़ा। इन ६ यंत्रों की समवेततान से जैजैवंती झपताल उत्पन्न होता है।]

आशू बाबू ने निःशब्द हँस कर कहा—जो जबरन् नहीं आये हैं, जिन्हें लाया गया है; उनका उत्पात सहना ही होगा।

हरेन बाबू ने सिर हिलाते-हिलाते कहा—आहा ! हम लोग इतने दिन बिना जाने साधु-संग करते आये हैं। यह श्रीभागवत का कौन सा अध्याय है आशू बाबू ? मैं तो भाई निकल पड़ा ! शास्त्रानुसार सर्वश्रेष्ठ अन्न है—भिक्षान्न वह तो सहज में मिलेगा ही !

—ज़रा में इतने घबरा गये ?

—पण्डितों ने कहा है—बालक नारायण हैं। ठीक है। वे सर्वज्ञ भी हैं। मेरे सर्वज्ञ बेटे जानते हैं कि एकाक्ष होने के कारण ही रणजीत सिंह, रणजीत सिंह हो गये थे। अतः बाप की दोनों आँखें ले लेने से राम-राज्य मिलेगा।

—बालकों का ही उत्पात है कि और कोई बात भी है ! मालूम होता है आज भारत को एक और वैराग्य शतक की प्राप्ति होगी।

—सोही मालूम होता है। रिपोर्टों के मारे नौकरी भी दुर्गानाम के बल पर टिकी है। इधर घर में—

आशूबाबू हँस पड़े। मैंने गम्भीर होकर कहा—नहीं, नहीं! हँसने की बात नहीं। ऐसी ही अवस्था के भीतर वैराग्य का बीज आत्मगोपन किये रहता है और अन्त में गृह त्याग कराके छोड़ता है। बुद्ध और चैतन्य के सामने इससे बड़े कारण कहाँ थे!

—वह भय नहीं। मैं तो बुद्ध चैतन्य से बहुत अधिक कर चुका। वे छोटे न हो जायँ इसी से कहता न था, पर आज कहना ही पड़ा। गृह त्याग, स्कूल त्याग, श्वशुर गृह त्याग, पत्नी त्याग, देश त्याग, काशी त्याग, गुरु त्याग करके तब श्वापद-संकुल सुन्दरवन में घुसा था। अब श्रान्त हो गया, अब देह त्याग —

वृष्टि बहुत जोर की होने लगी। नौकर लंप रख गया। मैंने कहा—जा, गरम - गरम चना-चिउड़ा ले आ। हरी मिर्च भी। इसके बाद चा और हुक्का—

आशूबाबू ने कहा—वाह! अब बैठक जमेगी। पत्रे में अमृत योग भी है। हरेन बाबू का पूर्ण इतिहास सुनना है।

—ऐसा बंदा नहीं हूँ। साधुओं को खूब पहचानता हूँ। उनसे बहुत डरता हूँ आशूबाबू! जितना कह दिया, वही बहुत है। हाँ, आप भी अपना पूर्व का इतिहास सुनावें तो मैं भी राजी हूँ।

—यदि इतिहास न हो?

—ऐसा कैसे हो सकता है? आपको इतना साधारण समझने का

साहस नहीं होता। पंजाब में किस सूत्र से पद धूलि आयी, यह बताना ही होगा।

—मेरी तो सहज बात है। पेट के लिए, नौकरी की तलाश में।

—अभी बंगालियों के पेट में ऐसी ज्वाला नहीं भड़की है कि पंजाब आवें। दो-चार अर्थ लोलुपों की बात छोड़िये। उन्हें छोड़ बाकी सब 'इतिहास वाले, महा पुरुष ही हैं।

– खैर, तुम कहो, फिर मैं भी कहूँगा।

—क्या कहूँ! आत्म-प्रशंसा और आत्म-हत्या में धर्म शास्त्र के अनुसार प्रभेद नहीं है। लेकिन कहना ही होगा। मेरे पिता पुराने फैशन के थे। सदराला थे। मैं बचपन में दशानन दस्तीदार की पाठशाला का दागा बैल था। उनका तमाखू भरता था, एकांत में दो-चार फूँक पी भी लेता था। एक दिन एक सहपाठी केष्टो ने उन्हें दिखा दिया। गुरु महा राज के नेत्र और वेत्र के एकत्र होने पर जो कुरुक्षेत्र होता था; वह जानी-बूझी बात थी। अतः पैरों का सहारा लेना ही पड़ा। भाग कर एक घर के दरवाजे पर ७४।। लिखा और भीतर जाकर बंद कर लिया। जान बची।

इस घटना के बाद ७४।। लिखने के कारण मेरी बुद्धि की प्रशंसा खूब फैली। हमारे जमींदार यादव चौधरी रीझ गये। अपनी सुपुत्री मुड़की देवी के साथ विवाह कर दिया। इससे पिता को मिला ५०००) ससुरजी को मिला मैं।

इसी समय से ससुरजी का काम-धाम देखने लगा। मुड़की देवी को कैफियत देनी पड़ती थी। घूम कर आने में देर होती तो झिड़की सुननी पड़ती थी, तंग आकर सोचा—पलायन।

इसी बीच ससुरजी कहीं बाहर गये और कलकत्ते से दो सज्जन आये। मुझसे ही बातचीत हुई। दियासलाई का कारखाना खोलना चाहते थे। मैंने गांव भर के पेड़ और आसपास के जंगल उन्हें दिखाये कहा—मैं भी यही सोच रहा था, इसी लिए इन सबको खरीद लिया है। ·ब जरूरत होगी, कटवा लूंगा।

इसके बाद हम लोगों ने एक लिमिटेड कंपनी का खाका बनाया, स॰ बातें स्थिर हुईं और मुझे २०००) पेड़ कटवाने के लिये देकर वे चले गये। मैं उन रुपयों को लेकर काशी पहुँच गया।

* * *

आगे के पृष्ठ गायब हैं

पण्डित जी

मेरा और पण्डितजी का साक्षात्कार एक स्टेशन पर हुआ था। मैं लखनऊ से आ रहा था। उस समय मेरी वीतरागिता ६६४ प्रतिशत थी (चीन की वर्त्तमान मँहगी का प्रतिशत इससे बहुत अधिक है।) क्योंकि लखनऊ में जिनके यहाँ गया था, उन्होंने ऐसी अभूतपूर्व अभ्यर्थना की थी कि मैं कंटकित और अवाक् हो गया था। 'महास्थविर' उपाधिकी लज्जाने ही मुझे जीवित रखा था, अन्यथा आज यह लिखने को यह शरीर न रहता। अस्तु।

फैजाबाद स्टेशन पर मैं सहसा उतर पड़ा, न जाने पूर्वजन्म के किस संस्कार के कारण। उतरने पर जब गाड़ी छूट गयी तब मेरा चित्त बारूद की चरखी की तरह घूमने लगा। समझ में ही न आया कि क्यों उतर पड़ा। अन्ततोगत्वा दूसरी गाड़ी के आसरे वहीं मृगछाला बिछाकर बैठ रहा। गाड़ी आने में घण्टों की देर थी।

थोड़ी देर में एक बंगाली जोड़ा वहाँ आ पहुँआ। उसके साथ ७ वर्ष से लेकर ७ महीने तक के बच्चे थे। भगवान् का नाम लेकर मैंने उनसे बातचीत शुरू कर दी। इतने में वहाँ एक जीव का आविर्भाव

हुआ—सिर मुड़ा, मूँछे छिपकली की दुम जैसी दोनों ओर नीचे लटकी, मिरजई पहने—जो अपनी असंख्य सिकुड़नों के कारण यह स्पष्ट प्रकट करती थी कि पहनने के पहले उससे मोड़-तोड़कर तकिये का काम लिया जाता था। पैरों में चमरौधा—उसमें छोटी-बड़ी अनगिनत दरारें थी जो शायद उसकी आयु के वर्षों की सूचक थीं। हाथ में एक कुबड़ी—जिस पर मैल और चीकट जमते जमते इतना गहन हो गया था कि वह बाँस की है या बेंत की, यह बताना असम्भव ही था, और बगल में थी एक गठरी—भगवान् ही जाने उसमें क्या था।

उस जीवने आते ही इधर-उधर देखा, फिर खूब जोर से खखारने लगा, जैसे गले में अटकी किसी चीज को निकाल कर ही छोड़ेगा। यह क्रिया समाप्त कर उसने उद्धत भाव से इधर उधर देखा और बंगाली जोड़े के पास आकर, उसकी ओर पीठ कर के बहुत आपत्तिजनक ढंग से खड़ा हो गया। बंगाली दम्पतिने भय, क्रोध और विवशता मिली दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैंने उस जीव के पीछे उँगली खोद कर स्वाभिमुख किया और पूछा—आप कौन हैं।

एक तरफ की मूँछ को दाँतों के नीचे दबाकर उसने उत्तर दिया—हम पंडित हैं।

मैंने उसकी मुंडी बेल की ओर एक दृष्टि से देखते हुए पूछा—सब कुशल है न!

पंडित ने संकेत नहीं समझा। मैंने पूछा—सिर क्यों मुड़ाया है?

उत्तर मिला—हमरे बाप मुंड़ावत रहे, दादा मुँड़ावत रहे, हमहूँ मुड़ाइत है।

पूछा—आप क्या पढ़े हैं ?

प्रति प्रश्न हुआ—पण्डित क्या पढ़ता है ?

मैंने उत्तर दिया—संस्कृत। लेकिन विषय क्या ?

पण्डित—तुम भ्रष्ट हो। विषय की बात करत हो।

हताश होकर पूछा—क्या-क्या पोथी आप पढ़े हैं।

उत्तर मिला—अमरकोख, रघूबंस, निखाद, उलूकतन्त्र···।

मैंने पूछा—उलूकतन्त्र ?

सगर्व उन्होंने कहा—हमारे आजा महातांत्रिक रहे। सारा गाँव उनका अनुग्रसित (अनुगृहीत) था। हम भी जानते हैं। हमरी खोपड़ी देखो, पंडिताई की निसानी है। मुँड़ाये हैं न !

मैंने महास्थाविर होकर भी उनके चरण छुए, कहा—धन्य हैं ! क्या कहा आपने उलूक ! सो उसकी तो आप साक्षात् प्रतिमा हैं। आपके पिता-पितामह तो आपसे बहुत बड़े रहे होंगे।

पण्डित ने गर्व से कमर टेढ़ी कर के कहा—हमसे दस गुना विसेस रहैं, सौ गुना, हजार गुना, लाख गुना, करोड़···।

बीच ही में रोक कर मैंने कहा—यह तो आपको देखते ही ज्ञात हो जाता है !

अब पण्डितजी ने पूछा—ये लोग तुम्हारे साथ हैं ? (संकेत बंगालियों की ओर था)।

मैंने कहा - नहीं।

पण्डित उनके पास ऐसे खड़े हुए जैसे तीन पग में पृथ्वी नापने का

प्रारम्भ करने बामन खड़े हुए होंगे। यह आशंका हुई कि पंडित उनके सिर पर चढ़ जायँगे।

पंडित ने पूछा—तुम्हारे लड़के हैं?

'हाँ' में उत्तर मिलने पर पूछा—सब के सब?

बंगाली ने कहा—हाँ।

प्रश्न—क्या खाते हो?

उत्तर—डाल भात!

पंडित—गिनकर लाया है?

कोई खो जायगा तो! सच बता, सब तेरे लड़के हैं?

अब तो बंगाली धोती का फेंटा कसता हुआ उठा—शाला शत्रू का आँख में राईभस्म डाल! हमारा इतना लेड़िका है तो तोमरा केया? पाजी, बोदमाश, आब बोलेगा तो जूती मारेगा।

इसके बाद तो जो हुआ, वह सदा याद रहेगा। पंडित अपने प्रांत की गालियों को यथासम्भव संस्कृत में देने लगे, बंगाली ने—पूर्वबंग के धान के खेतों में दी जाने वाली गालियों का खाता खोल दिया। मुझे बहुत खेद हुआ कि मैंने शार्टहैंड नहीं सीखा था—वह इस समय काम में आता। मैंने उसी समय प्रण किया कि अब अवश्य सीखूँगा।

इस जीव से फिर भेंट करने की उत्कंठा थी, इसलिए उक्त झगड़े में मैंने पण्डित का ही पक्ष लिया।

थोड़ी देर में मैंने बंगाली को अलग बुलाकर कहा (बंगला में)—इसको पहचानते नहीं, नामी डकैत है। ऐसे ही झगड़ा कर के लूटता है। अभी खुखड़ी निकाल देता।

बंगाली ने त्रस्त होकर मेरे हाथ पकड़ लिये—हाम को बचाश्रो, हाम को बचाश्रो।

मैंने उनको प्लेटफार्म के एक कोने पर ले जाकर बैठा दिया। बंगालिन ने दो रुपये मेरे चरण पर रख कर, आंचल गले में डालकर प्रणाम किया और रो कर कहा—साधू बाबा! आप हामको बचा दिया। ओरे बाबा! डाकात के हाथ में पोड़ गिया था।

लौट कर पण्डित से बात करने लगा। पाये हुए दो रुपयों में से एक उनको दिया, कहा—आप बड़े पण्डित हैं।

पंडित ने रुपया टेंटस्थ कर के कहा—हम काशी जा रहे हैं। जरूर आना। वहाँ हमारा मकान है। हमारे ही पास आना। दैवकी मार, कुछ दिनों बाद कलकत्ते से ऊबकर कहीं भी जाने की तैयारी कर रहा था। भूतपूर्व जज थाकोहरि मुखोपाध्याय की गृहिणी को पता चला तो उन्होंने बुलाकर निवेदन किया—आपको तो कहीं भी जाना ही है, काशी चले जाइये। हमारा थोड़ा सा सामान वहाँ हमारे दामाद को दे देना।

मैंने सोचा—चलो, इस बहाने काशी तक का किराया तो मिला।

दो ही एक दिन बाद मैं केले के दो घौर, करीब १० सेर स्पंज रसगुल्ला, एक मसहरी आदि लेकर रवाना हुआ।

पण्डित ने इस ढंग से पता बताया था जैसे काशी की सीमा में आते ही उनके परिचितों पर कुछ प्रेत चढ़ जाते हों और उन्हें सीधे पण्डितजी के घर में घुसा देते हों। तीन-चार घंटे मैं घूमता रहा, उनका पता हाथ में लिये, उनका पता न चला। मैंने सोचा था कि इन्हीं के यहाँ विश्रामादि कर तब चीजें जहाँ पहुंचानी है, वहाँ पहुँचाऊँगा। और घंटाभर

बीतने पर याद आया कि पण्डित ने यह भी कहा था कि हमारे घर के पास एक कुंआ है। अब मैं उसी की तालाश में चला। वह मिल गया। मैं उसी की जगत पर इस आशा में बैठ गया कि पानी लेने वह जीव अवश्य आयेगा। आशा पूर्ण हुई। २-३ घंटे बाद उनके दर्शन हुए।

उन्होंने मुझ से पहले मेरा सामान देखा और अधिक से अधिक उठाकर चल पड़े, कहा—और सब उठा लाओ।

एक गली-सी में हम प्रविष्ट हुए। वह मकान के भीतर थी। इसके बाद एक दालान में पहुँचे। उसमें एक खाट पड़ी थी। वह वैसी ही थी, जैसी एकादशाह के दिन महापात्र को दी जाती है। मैंने एक बार पंडित को ध्यान से देखा। दालान में एक चौतरा-सा था। उस पर कुछ पोथी-पत्रे थे। दालान के बाहर मकान का चौक था, उसके ऊपर आकाश। चौक में ही कल भी थी, पैखाना भी। चौक में चूल्हा और कुछ बरतन भी रखे थे।

स्नानादि से निवृत्त होकर मैं बैठा—उसी खाट पर। कुछ ही मिनटों में मैं त्रस्त होकर उठ गया।

पण्डित ने हँसकर कहा—उस पर बैठना योगियों का काम है।

मैंने पूछा—आखिर खटमलों की यह बस्ती आपने क्यों बसा रखी है?

पण्डित ने रहस्य भाव से कहा—इस पर बैठकर हम तन्त्र करते हैं—

इसके बाद उन्होंने कहा—तुम प्राचीन सिष्टाचार जानते हो। लड़के बच्चों के लिए केला वगैरह ले आयो, अच्छा कीन्हों।

यह कह कर उन्होंने रसगुल्ले का कनस्टर और एक घौर केला

उठाया और बाहर की ओर चले। मैंने त्रस्त होकर कहा—महाराज! यह दूसरे का है।

पण्डितजी ने आगे बढ़ते हुए निर्विकार चित्त से कहा—तुम बड़े मसखरी बाज हो भाई!

अब तो मैंने उठ कर, दौड़ कर उन्हें रोका, कहा—ये दूसरों को देने को हैं। मेरे नहीं है।

पण्डित ने दोनों चीजें खड़े-खड़े पटक दी—ले आओ, काहे को ले आये दूसरे की चीज हमारे घर में!

मैंने दोनों चीजें फिर यथास्थान रखीं और चुप बैठ गया।

मैं सोच रहा था कि अब खिसक चलने में ही कुशल है।

इतने में पण्डित ने कहा—पहले पहल काशी आये हो?

मै झूठ बोला। कहा—नहीं।

उन्होंने सोत्साह कहना शुरू किया—यहाँ बहुत सी चीजें दर्शनीय हैं और कई चीजें यहाँ नफीस बनती हैं, जैसे मलाई का बरफ, कचौड़ी। सुनो, यहाँ की कचौड़ी कभी खायी है।

मेरे 'नहीं' कहने पर फिर वाग्धारा चली—तो जन्म व्यर्थ गया, उठो, कचौड़ी गली में चले जाओ। बिट्ठल की दूकान पूछकर कचौड़ी खा आओ। भरसक इतनी खा लेना कि रात को भी भूख न लगे; तभी आनन्द आवेगा!

मैंने सोच विचार कर कहा—यह पातक मेरे साथ है! पहले इसे थाकोहरिबाबू के दामाद के माथे पटक आऊँ तब खाने को देखूँ।

पण्डित ने कहा—तो वही करो।

मनुष्य को खाली नहीं बैठना।

मैंने जैसे तैसे सब सामान उठाया और चला। पण्डित ने कहा—विस्तरा रहने दो।

मैंने उत्तर दिया—यह भी उन्हीं को देना है। मैं तो खाली हाथ आया हूँ।

पण्डित ने क्रुद्ध दृष्टि से मेरी ओर देखा। फिर बोले—तो जल्दी जाओ। भला किसी का विस्तर लेकर इतनी देर रुकना उचित है?

मैंने सामान सहेज कर कहा अभी वापस आता हूँ।

उत्तर न मिलने पर घूमकर देखा—दरवाजा न जाने कब बन्द हो गया है।

मैंने सुख साँस ली और आगे बढ़ा!

नौकर का बेटा

आँगन में दो बच्चे खेल रहे थे। दालान में कुर्सियों पर बैठे कुछ लोग तमाशा देखकर प्रसन्न हो रहे थे। उनमें भी कुछ सचमुच प्रसन्न हो रहे थे, कुछ अपना प्रसन्न होना दिखा रहे थे।

एक बच्चा था दुबला-पतला, कमजोर, दूसरा काफी हृष्ट-पुष्ट, और तन्दुरुस्त। पहला था मालिक का, दूसरा नौकर का।

एक बच्चा-गाड़ी है, दोनों बच्चे उसे इधर उधर ढंगलाते हैं, किलकते हैं और तुतली बातें करते हैं।

दर्शकों में दोनों बच्चों के बाप, उनके दो चार मित्र और तीन बड़े बच्चे हैं। नौकर आँगन में उन दोनों बच्चों के पीछे टहलता जाता है और उन्हें गिरने फिसलने से बचा जाता है।

नौकर का नाम है चून्नू। बच्चों के नाम तो कुछ और हैं, आप क, ख, और ग, मान लीजिये! ये बच्चे कवि नहीं, जो नाम न देने से बुरा मान बैठेंगे।

'क' ने एकाएक दौड़कर पहले बच्चे को गोद में उठा लिया। वह कुछ चकित-सा हो रहा। खेल रुक गया। गृह-स्वामी की असन्तुष्ट-मुद्रा देख कर एक दर्शक ने कहा—क्यों उठा लिया?

'क'—बच्चा गिर पड़ते। पैर फिसल गया था।

चून्नू—अरे, हम तो हई हैं।

'क' के बाप ने आँखों से ही उसे कुछ ऐसा डाट दिया कि वह चुपका और सुस्त हो रहा। उसकी समझ में अपना अपराध न आया।

दोनों बच्चे हाथ मिलाकर इधर घूमे तो एक दर्शक ने ताली बजा के बुलाया—आओ! ताली शायद कुछ जोर से बजी और एक पूरे आदमी की पूरी आवाज भी शायद बच्चों के कानों के लिए कुछ ज्यादा साबित हुई क्यों कि वे चौंक पड़े और उसी अवस्था में पैर जो आगे पड़ा तो फिसल गया। दोनों बच्चे गिर पड़े। चुन्नू ने मशीन की तरह मालिक के पुत्र 'बच्चा' को गोद में उठा लिया और हँस-चुमकार कर उसकी व्यथा भुलवा देने की चेष्टा करने लगा। जिन महाशय ने इन बच्चों का ध्यान आकृष्ट किया था, वे अपने को इन बच्चों के गिरने का कारण समझ और मानकर लज्जित से हो उठे और दूसरे बच्चे को गोद में उठा लिया। वह गोद में लेते ही चुप हो गया। चुन्नू अभी चुप कराने की कोशिश कर रहा था।

मालिक ने अपनी न्याय और समदृष्टि का परिचय देने के लिए नौकर के बच्चे को दया की दृष्टि से देखते हुए कहा—इसको भी सम्हाला करो चुन्नू!

नौकर केवल जरा-सा मुस्कुराया। अर्थात् मेरे बच्चे पर इससे ज्यादा प्रसन्न आप क्या हो सकते हैं तथा आपके सामने रहते मैं अपने बच्चे को ज्यादा कैसे सम्हाल सकता हूँ। दर्शकों ने मालिक की इस बात से उत्पन्न प्रसन्नता को अपनी ताकत भर चेहरे से प्रकट किया। इस पड़-

ताल में हम नहीं पड़ना चाहते कि किसके हृदय में प्रसन्नता थी, किसकी केवल आँखों में। मालिक भी अपना कर्तव्य निबाहने तथा उस निबाहने का पुरस्कार पाकर संतुष्ट से देख पड़ते थे।

बच्चा खूब स्वच्छन्दता से हँस पड़ा। उस समय उसका मुँह बहुत सुन्दर देख पड़ता था। बच्चा बार-बार उसी मुद्रा को दुहरा रहा था। 'ख' ने उल्लसित होके 'ग' से कहा—वह देखो, वह देखो!

मालिक ने क्रुद्ध दृष्टि से उसे देखा। चुन्नू ने डांटा—चुप रह। गधा अत्तवार को नजर लगावेगा।

नौकर चुन्नू से कम से कम जाति में बहुत श्रेष्ठ पण्डित रावणेश्वर त्रिपाठी जी बोल उठे—साले कहाँ से आ जाते हैं। निकल जा बाहर! 'ख' उठ खड़ा हुआ। धीरे-धीरे बाहर निकल गया। वह ऐसे का लड़का था, जिसका संकोच करने की जरूरत चुन्नू भी न समझता था। अर्थात वह ऐसा; चुन्नू के मालिक का पूरा-पूरा आश्रित था।

'ग' चुप था, उसने अपने ओठ दृढ़ता से बन्द कर लिये। अपने साथियों से वह काफी शिक्षा पा चुका था। ऐसी ही मण्डलियों में उठ बैठ कर बच्चे बुद्धिमान हो जाते हैं।

नवीन सम्पादक

ग्रीष्म ऋतु थी। प्रभु पंचानन्द अपने बगीचे में हृष्टपुष्ट और तुः तथा उशीर के व्यजन से जुष्ट विराज रहे थे। इसी समय चमड़े की पेटी पहने द्वारपाल आया और जमीन पर माथा टिका कर कुतूहल और आश्चर्य के साथ साग्रह निवेदन किया—हे शीघ्र लेखनकला के आचार्य! हे वामहस्त लेखनकलापटु सव्यसाची! श्रीमान् के दर्शन के लिए व्यग्र कोई पुरुषाकृत जीव विशेष द्वार पर आ खड़ा है।

प्रभु ने मन्द-मन्द हँस कर आज्ञा दी—इस उशीर के पंखे को तर कर दो और तब उसे यहाँ ले आओ।

द्वारपाल ने कुछ जीर्ण और दुर्गन्ध युक्त कपड़े पहने किसी दुर्बल पुरुष का वहाँ प्रवेश कराया।

उसने बैठकर प्रभु के चरणों की धूलि सिर पर, मुंह के भीतर चारों-ओर रखकर कहा—अपने उद्धार के लिए श्रीचरणों में यह शरीर प्रणत है।

प्रभु—आओ बच्छ! जहाँ चाहे बैठो! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

वह—महात्मन्! मैं विपत्ति-सागर में पड़ा हूँ, मग्न हूँ, विनष्टप्राय हूँ।

प्रभु—कहो, बोलो, कथन करो ! क्या हुआ ? क्या भय प्राप्त ?

वह—आप तो सब कुछ जानते हैं। आप त्रिकालज्ञ हैं। सबके भीतर तक देखते हैं।

प्रभु—बस, बस ! हम लीला के लिए इस समय आत्मविस्मृत हैं।

वह—तो देव सुनें ! मैं एक पत्र का सम्पादक हूँ। मैं ही उसका मुद्रक और प्रकाशक हूँ। मैं ही व्यवथापक और अक्षरयोजक हूँ। मैं ही...

प्रभु—अहो ! धन्य है तुम्हारा पाण्डित्य ! धन्य हो ! कृतविद्य हो ! दर्शनीय भी हो !

सम्पादक—महाराज ! किसी पुरुष की ओर अंगुलि-निर्देश कीजिये, जिससे मेरा काम सुचारु रूप से चले।

प्रभु—तुम्हारा क्या काम है ? कैसा पुरुष ?

सम्पादक—ऐसा पुरुष, जिसे मैं अपने पत्र में गाली दिया करूँ, जिससे ग्राहक बढ़ें।

प्रभु—यह कैसे ?

सम्पादक—गाली देने से उसके पक्ष के लोग भी पत्र पढ़ेंगे और विपक्ष के भी।

प्रभु—ऐसा ! तो सम्राट् को गाली दो या उनके प्रतिनिधि बड़े लाट-साहब को दो !

सम्पादक—तब तो मैं 'बड़े घर, भेज दिया जाऊंगा।

प्रभु—लेकिन तुम्हारा नाम तो हो जायगा।

सम्पादक—सो है, लेकिन मेरे कुछ मित्र अभी अभी 'बड़े घर' से आये हैं, उनकी बातें उत्साहवर्द्धक नहीं हैं।

प्रभु—तो सुनो ! शूकरघाट पर एक महामहोत्त रहते हैं, उन्हें गाली दो।

सम्पादक—उसे तो कोई जानता ही नहीं। वह तो महामूर्ख है। हस्ताक्षर करने में ७ कागज फाड़ डालता है। उसका एक अक्षर पृथ्वी पर रहता है तो दूसरा आकाश की ओर दौड़ता है।

प्रभु—तो बैरिस्टर मर्कटराव हरगुण्डे को गाली दो।

सम्पादक—हरि ! हरि ! वह कानून जानता है। मुझे अदालत में खींच कर द्रौपदी बना डालेगा। ऊपर से अर्थ दण्ड भी होगा।

प्रभु-तो फिर, अच्छा देखो ! महीना भर हुआ, हाथीपाड़ा के महा-महोत्तजी मरे हैं, उन्हीं को सही !

सम्पादक—मरों को कौन पूछता है !

प्रभु—तो साहित्यिक चक्रवर्ती महाशय को।

सम्पादक—उनसे मेरी मित्रता हो गयी है।

प्रभु—तो स्त्री से तुम्हारा काम चलेगा ?

सम्पादक–मैं वेदान्ती हूँ, स्त्री-पुरुष समान हैं। कोई हो ! पर प्रसिद्ध हो, जीवित हो और निरीह हो।

प्रभु—तो अपने पिता को गाली दो। जीवित भी हैं, तुम उनके पुत्र हो, अतः प्रसिद्ध भी हैं और निरीह भी होंगे ही।

सम्पादक–नहीं प्रभु ! कहीं मुझे त्याज्य पुत्र घोषित कर दें तो उनकी सम्पत्ति न मिलेगी।

प्रभु—तो अपनी माँ को गाली दो। कोई डर की बात भी नहीं। शंकराचार्य कह गये हैं–क्वचिदपि कुमाता न भवति।

सम्पादक—इससे ग्राहक बढ़ेंगे ?

प्रभु—अवश्य।

सम्पादक—तो यही करूँगा।

प्रभु—हमारे सामने शुरू कर दो।

सम्पादक—लज्जा होती है।

प्रभु—बस, उसे जीत कर विजयी होओ !

सम्पादक—तो हे माँ, तू दग्धमुखी, वन्ध्या।

प्रभु—हां, हां कहो।

सम्पादक—शर्म लगती है।

प्रभु—अभ्यास, अभ्यास। गीता में कहा है–अभ्यासेन तु कौन्तेय !

सम्पादक—करूंगा प्रभु ! करूंगा।

प्रभु—जिस अंक में गाली दो, उसे हमारे पास भी भेजना। अच्छा अब जाओ। हम बहुत प्रसन्न हैं।

———

राष्ट्रभाषा-संसकिरित

महाप्रभु पंचानन्द के दरबार में पं० खयालीराम गये थे, ये इसी शताब्दी में संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं।

महाप्रभु पंचानन्द का दरबार लगा हुआ है। महाप्रभु लुंगी पहने आरामकुर्सी पर लेटे हैं। उनका महान् जटाजूट आराम कुर्सी के पास ही रखे एक स्टूल पर विराजमान है। दरबारी बैठे हैं।

चोबदार के साथ पंडित खयालीराम आते हैं, मिरजई पहने हैं। आपके साथ पारायण शास्त्री, नकलोलभट्ट बेताल, राखोहरि भट्टाचार्य एणोराम होसबेटा, माड़मूषि आदि हैं। आप सब लोग नंगे पैर हैं।

आप लोग महाप्रभु को प्रमाण कर, दरवाजे से वहाँ तक की चाँदनी मलिन कर, आसीन हुए।

महाप्रभु ने मंदस्मित के साथ कहा—आओ बच्छ! भणन करो!!

खयाली राम—म···म ··महराज! काव कहीं! संस्कृत जानौं मरि गयी! हम वहि का राष्ट्रभाखा बनैया अहैं। बनाईं कै छौंड़ब!

(महाप्रभु ने दरबारियों की ओर देखा। उनमें से तीन-चार इन शास्त्रियों के पास खसक आये।)

एक ने कहा—वाह शास्त्रीजी !

दूसरे ने पूछा - आप संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं ?

तीसरा—कहाँ की ?

खयाली—भारत वर्ष की । (मूछों पर ताव देने लगे)

पहला —राष्ट्रभाखा का क्या अर्थ ?

खयाली—जौने का भारत माँ सब बोलत होयँ ।

दूसरा—ऐसी तो कोई भी भाषा नहीं है ।

खयाली—हम सबते बोलवैबे । सिर पर सवार हुइ जाब । हम का भूत समझौ !

तीसरा—संस्कृत कभी राष्ट्रभाषा थी ?

खयाली -अनन्तकाल ते रही । ब्रह्माजी के मुखते निकरि कै सब सृष्टि मात्र के मुख मैं घुसि गयी । प्राचीन कालमाँ सब लोग यहि का भाखत रहे । सब काव्य नाटक द्याखौ !

पहला—नाटकों में स्त्री और शूद्र तो प्राकृत बोलते हैं ।

खयाली—जौनी स्त्रियाँ अथवा जातियाँ पतित हुइ गयीं, उही प्राकृति बोलत रहैं । अन्त माँ कवि लोग स्त्री मात्र ते प्राकृति बोलवावै लागेन । कारन, कौन पवित्र है कौन पतित; यह कसस जाना जाय ?

दूसरा - ठीक ठीक ! लेकिन अब तो सभी पतित हो गये । तब किसी को संस्कृत बोलने का अधिकार ही न रहा !

खयालीरामजी खैनी फाँकने लगे ।

होस बेटा—ऐसा है कि पतित को सुधारणा करनी पड़ेगी । पहले शरीर शुद्धि करलो तब मानसिक शुद्धि ।

माड़मूषि—(बीच ही में) पंचगव्य, गोमूत्र।

खयाली—(रोक कर) बात यहि है कि संस्कृत ब्वालैते पाप कटि जात हैं।

पहला—खैर, लेकिन संस्कृत की अवनति कब से हुई ?

खयाली—जब से अंगरेज आये।

दूसरा—तो पहले अंगरेजों को संस्कृत पढ़ाई जाय।

खयाली—पहिले के अंगरेज पढ़तै रहैं। कलकत्तामाँ कऊ अंगरेज कविता करत रहैं। एकै हमरे पिता के बड़े मित्र रहैं। प्रतिवर्ष उत्तम सुरती पठवत रहैं। हम उनका चाचा कहित रहै।

तीसरा—यदि सब अंगरेज संस्कृत बोलने लग जायं तब तो बहुत अच्छा हो !

खयाली—बहुत नीक होय। हम पढ़ैवे।

महाप्रभु—सब से उत्तम वार्ता यह है कि भारतवर्ष के सब उत्तम पण्डित इंगलैण्ड भेज दिये जायँ। वे वहाँ सब को संस्कृत पढ़ा दें। इसके बाद वे अमेरिका आदि देशों में भेजे जायँ।

खयाली—(उछल कर) धन्य ! धन्य !

पहला—पर संस्कृत कितने दिनों में आवेगी ?

खयाली—एकै हमरे मित्र हैं दर्शनढुँढ़ार। उइ कहत हैं कि हम एक सप्ताह माँ संस्कृत पढ़ा द्याब।

दूसरा—यह तो असंभव मालूम होता है। एक सप्ताह में संस्कृत नहीं आ सकती।

खयाली—एकै गोरखपुरमाँ बसन्त पण्डित हैं। उइ तीन महीनामाँ पढ़ावै का कहत हैं।

तीसरा—तीन बरस कि तीन महीना ?

खयाली · अब जानौं समय जात का लगत है ? तीन बरिसै सही !

[नकलोल भट्ट वेताल एकाएक उछलते हैं। फिर कहते हैं—]

नक०—काय हो शास्त्री ! पण्डित बिलायत कैसे जायगा ?

पहला—पानी के जहाज से।

नक०—समुद्र यात्रा निषिद्ध है। पण्डित वहाँ जाने से पतित हो जायगा।

पहला—तो हवाई जहाज से भेजा जाय।

चौथा—और मूर्ख पण्डितों को भेजा जाय। आप लोग तो आपस में एक दूसरे को मूर्ख समझा ही करते हैं। इस रीति से पण्डित भी वहाँ पहुँच जायँगे।

परायण शास्त्री—तात्पर्य ई है कि हिन्दू मात्र पतित होई जाई। पर हवाई जहाज से पतित होई की नहीं ?

खयाली—ठीक कह्यौ। सनातन धर्मी बिलायत नहीं जाइ सकत हैं। हवाई जहाज वाली बात पर बिचार कीन जाई।

दूसरा—अर्जुन आदि तो बिलायत गये थे। (शास्त्री लोग एक दूसरे का मुँह देखते हैं)।

पहला—तो पतित भी तो हुए। उसी पाप से उनको हिमालय में गलना पड़ा। केवल युधिष्ठिर नहीं गये थे, वे ही बच गये।

दूसरा—तो द्रौपदी क्यों गली ?

पहला—उनका अपने पतित पतियों से सम्बन्ध था। 'सत्संसर्गी च पंचमः'।

राखोहरि भट्टाचार्य—लेकिन यह कथा महाभारत में नहीं कर को लिखी है।

पहला—हाँ, उस में नहीं है। परन्तु हाल में ही नागलोक अर्थात् वर्तमान अमेरिका में एक ताड़पत्र की पुस्तक मिली है। वह अष्टावक्र ऋषि की लिखी है। उस पर आधी टीका अजीगर्त ऋषि की है और आधी उनके पुत्र शुनःपुच्छ की। उनकी टीका का नाम 'शुनःपुच्छीया' है। उस में यह बात लिखी है।

हाँस बेटा—हो! तो द्रष्टव्य है। व्यासजी ने क्यों नहीं लिखा?

दूसरा—व्यासजी ने अपने पौत्रों के साथ पक्षपात किया होगा!

महाप्रभु—तो शास्त्रीजी! आप स्त्री शूद्रों की क्या व्यवस्था करेंगे?

खयाली—महाराज। वेद अरु वेदांग छाँड़ि कै सब संस्कृत उनका पढ़ैंबे।

महाप्रभु—तो शास्त्रीजी! वेद-वेदांग की कैद क्यों लगाते हो? उनको पढ़ता ही कौन है?

खयाली—कोऊ सार पढ़ै, न पढ़ै पर हम नियम नहीं छाँड़ि सकित है।

महाप्रभु—तो अब आपकी क्या योजना है?

खयाली—हम एक संस्था कायम करिबै। वहि की शाखा समस्त देश माँ होइ हैं। देश भरमाँ एक लाख पाठशाला खुलि हैं। सर्वत्र संस्कृत पढ़ावा जाई। ई सब कामनमाँ बीस लाख रुपिया फेर खरच अहै।

पहला—बीस लाख!

खयाली—न होय, पाँच लाख धरौ।

दूसरा—नहीं महाराज ! बीस करोड़ चाहिये।

खयाली—घाखौ, भारतवर्षमाँ अठाइस करोड़ हिन्दू हैं। जौ सब एक एक रुपिया देयँ तो अठाइस करोड़ हुइ जाय।

दूसरा—ऐसा क्यों न किया जाय कि काशी में एक महायज्ञ किया जाय। उसमें कोई ऐसी वस्तु अभिमन्त्रित की जाय जिसे खाते ही लोग संस्कृत बोलने लगें तब उस वस्तु को बेच-बेच कर...

पहला—भला यज्ञ वाले बेचने का काम करेंगे !

दूसरा—तो वितरण किया जाय। इस प्रकार सहज में संस्कृत का अतीव प्रचार हो जायगा।

तीसरा—और यह व्यवस्था भी हो कि उक्त वस्तु को खाते ही संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाएं लोग भूल जायँ।

(शास्त्री लोग एक दूसरे का मुँह देखते हैं)

खयाली—ई कुलमाँ बड़ी झंझट है। एक लाख पाठशाला बिना काम न चली।

चौथा—तो प्रत्येक प्रान्त में शाखा होगी।

खयाली—हाँ, सर्वत्र प्रचारक चही।

पहला—तो प्रचारक ऐसे हों कि उनको कमाकर खाने की चिन्ता न हो, उनको अनिद्रा रोग हो और उनके आगे-पीछे कोई न हो तो और अच्छा।

खयाली—खाये की का चिन्ता है। प्रचारक जहाँ जाई हुआँ लोगन खाये का न देहैं ?

दूसरा—देशी राज्यों में भी प्रचार होगा ?

पहला—दक्षिण हैदराबाद छोड़कर।

खयाली—हुवौं होई। हम अपनी कहब, उ मानैं चहै न मानैं।

राखोहरि—हैदराबाद में प्रचार करने हम जायंगे।

महाप्रभु—साधु! शूरोऽसि!

(इशारा करते हैं और एक सेवक उनके सामने एक मृत्तिका-पात्र में सुपारी के टुकड़े लाता है।)

(शास्त्रीजी—हो! एक टुकड़ा खाकर मुँह बनाते हैं।)

पहला—वह सुपारी मंत्रोच्चारण पूर्वक गोमूत्र में तली गयी है। खास आप ही लोगों के लिये यह व्यवस्था है। महाप्रभु जिस पर प्रसन्न होते हैं, उसी को यह प्रसाद मिलता है।

(एणीराम को वमन होने के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।)

महाप्रभु—आपकी संस्था को चलाने के लिये एक कमेटी की आवश्यकता है। आप पण्डितों की सभा कीजिये और पदाधिकारी निश्चित कीजिये।

खयाली—हम सभा काल्हि कीन रहै। पण्डित आयेन, पर जब सुना कि दक्षिणा न मिली तो वापस चले गयेन। ५-७ का हम धरि धरिकै बैठारा। पर फल कुछ न निकला।

महाप्रभु—क्यों?

खयाली—ई सब टुकाची २० लाख रुपिया के नाँम धोती कसैं लागेन। इन सारेन कबौं सौ रुपल्ली एक संग नहीं दीख, तौ बीस लाख की को कहै?

पहला – इन लोगों को टकसाल दिखाइये !

खयाली—आप सब का बुलावौ अरु अपने हियाँ बन्द करिकै सात दिन गोबर-गोमूत्र खवाय डारौ। तब जाइकै बुद्धि सुद्ध होय।

महाप्रभु एवमस्तु।

(इशारा करते हैं। चपरासी खयाली राम और उनके साथियों को पकड़ने दौड़ते हैं और वे डोलची, अंगोछा आदि छोड़कर भागते हैं और कुछ देर बाद नेपथ्य से आवाज आती है—अरे हम कां छाड़ौं ! हम राष्ट्र भाखा न करिबै; ओ ओ ! थू थू !! मरि गयेन, औ आँख !)

महाप्रभु—(एक दरबारी से) जाकर छुड़ा दो। (कुछ देर बाद लोगों के भागने की आवाज और अस्पष्ट गालियाँ सुनाई पड़ती हैं। फिर शान्ति)।

महाप्रभु—हाँ कविजी ! इनके आने के पहले आप जो छंद सुना रहे थे, वह अधूरा रह गया था।

कविजी—श्रवण कीजिये महाराज—

बैठिबे की उठिबे की बोलबे की चालिबे की,
जानत न एकौ चाल आये जग-ढाँचे मैं।
देखबे मैं मानुस की आकृति दिखाई परै,
पसु कौ सुभाव औ परिंद परे जाँचे मैं।
ग्वाल कबि कहत बिरंचि तुच्छ जंतुन के,
काढ़ि प्रान डारे, लगे ख्यालन के खाँचे मैं।
कूकर तैं सूकर तैं गर्दभ तैं उल्लुन तैं,
काढ़ि-काढ़ि जीव डारे मानुस के साँचे मैं॥

मनोरंजक लेख

इस शीर्षक के अन्तर्गत जो लेख संकलित किये गये हैं, वह सभी पंचानन्द के नाम से १९४५ में लिखे गये हैं और उसी समय 'संसार' और 'तरंग' में प्रकाशित हुए थे। इनमें जो व्यंग निहित है, वह अपनी सत्ता प्रतिपादित करने में स्वयं समर्थ है।

समस्या और समाधान

[हमारे पास एक सज्जन का एक पत्र आया था। उसे हमने अपने साइकलोजिस्ट (दिमाग का अध्ययन करने वाला) के पास भेजा था। मूलपत्र (दो कविताओं के साथ) तथा साइकलोजिस्ट का उत्तर जन-साधारण के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है।]

*

माननीय महाशय,

आप मेरी रक्षा करें। मेरे वंश का आशा-भरोसा एकमात्र नाती है। उसे बहुत घी-दूध खिला कर आदमी किया है। इस समय वह १३ वर्ष का है और ८ वें दर्जे में पढ़ता है। मैं कुछ दिनों से लक्ष्य कर रहा हूँ कि उसका भाव विचित्र हो गया है। पहले तो मैं समझा नहीं, पूछने से उसने कुछ बताया नहीं, हँस कर उड़ा दिया। प्रतिवेशी की लड़की पाटला को तीन दिन घुघनी खिलाकर मैंने यह जाना है कि मेरा नाती रणेन्द्र कविता लिखता है। आज मैंने उसे सिनेमा भेजकर उसके पोथी-पत्रों की गहरी तलाशी ली। हिसाब की कापी में ३, 'रफ' कापी में ५ और एक अन्य कापी में १५ कविताएं मुझे मिलीं। सुना है, आप समझदार

आदमी हैं, ये कविताएं किस जाति की हैं, यह बतलावें तो बहुत उपकृत होऊँगा। मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता। मेरी छोटी लड़की कहती है कि ये प्रेम के अत्ययंत ऊँचे अंग की कविताएं हैं। बगल का लड़का विजय कहता है कि ये राजनीतिक हैं। मास्टर कहता है कि रवीन्द्र को अंगरेजी और हिंदी के जितने कठिन शब्द मालूम थे, सब उसने सजा दिये हैं। उमाकान्त डाक्टर ने कहा है कि—'सप्रेस्ड सेक्स' से इस प्रकार की रचना होती है, उसका शीघ्र विवाह करो। महाशय! अब आप बतावें कि मैं क्या करूँ? आप न समझ सकें तो अपने पत्र में प्रकाशित कर दें, और कोई पाठक कदाचित् कुछ बता सके। सुपरामर्श से अनुगृहीत करें। अलमतिविस्तरेण। नमस्कार।

विनीत

सशंकित शर्मा

(दो कविताएं)

(१) गांडीवी

गांडीवी! हुंड़ार जानते हो
खांडव का पांडुर हुँड़ार?
कपिश क्रंदन उसका ध्वनित है
उत्क्रान्त अंबर में।
वत्सहीन वसंत के
प्रजनन में शिलींध्र—संकुल

जातिस्मर विस्मापन में
निर्वीजित सुना है क्या ?
प्रौढ़पेंच प्रपंचित प्रभविष्णु
यश की जलेबी—
प्राक्कालिक प्राजन-प्रताडन-प्रचंड प्रसव
गंडोफेरास का किंवा कैसांड्राका
धूसर कंकाल
कृकलास अतिमर्त्य कैनोपास
पाप देखा है ?
आसमुद्र विजृंभण में फूत्कृत घटोत्कच-प्रेम
देखा क्या ? उसकी मृत्युम्लान मातरिश्वद्युति ?
दैनंदिन अंजुमन में
बालखिल्य-आनन्द व्यूह
मार्जारी का गर्भस्राव
क्लेद-रक्त में करे संचरण
महोत्साह में मत्स्य-सम
अर्धदुष्ट, अलज्ज, अन्यायी
उल्लसित मुक्तनीवि पृथ्वी की
अन्तिम आकृति
अट्टहास्य में उन्मुख कुम्भीपाक में
होते चित्त चारोखाने ?

वेपथु वल्लरी-सम ध्यानस्तब्ध
हिपोपोटोमस
क्रन्दसी अटवीवक्षे गतक्लम
व्यूढोरस्क स्तन,
छिन्नच्छद आपिंगल एरंडक।
पुष्प अनार्तव
हाय!
श्वेतमृत्यु-सम सविनय
की नहीं तो कलाबाजी
अन्धकार—करुण—कागज में?
शांत सरीसृपगंधी पतले
लिपस्टिक-युक्त, रक्ताधर के
विचुंबन में शूरत्व नहीं
टेंट में चाहिये टका।
धुत्! सतुआखोरों से तत्त्वकथा!
गांडीवी हुएडार तुम
मरो जला खांडव को॥

(२) सम्बोधि

अब समझा
वपुष्मान सप्तार्चि के सपिंडीकरण में
क्यों रोती है मूर्द्धन्य की कमाटीन-
कटभ्रु मूर्च्छना!

आज समझा
पौष्टिक सौष्ठव में क्यों सविकल्प
आगस्त्य विधृति
मूष्यायण निर्मन्थन में उपस्तंभ
शैलूष श्रृंगार सम
वीतिहोत्रत्रपा
महेश्वास वैयाघ्र वंचना !
हाय इसी से
कैमितिक। सम्मेलन में भचक्र
भिक्षा में केवल पाता—
मातरिश्वा अस्पष्ट भुड़भुड़ि।
उञ्चिचण्डाकी गंध किंवा
शुष्क शून्य स्वैरिणी शुश्रूषा।
स्तंभिक पिंडतापत्ति वात्यावर्त में
वक्रनाल गाढ़ !
धान्याम्ल की तिर्यक् सांद्रता
स्वाधिष्ठिता वैतरणी
पर्यंक-पांसुला प्रेम में ऐंड्रोमेकी
स्वरलिपि सीखती
निरीश्वरा पलांडु के पेट में फूटता
प्रगल्भ पंकज।

*

(साइकलोजिस्ट का उत्तर)

महाशय,

आपका पत्र कलकत्ते से मिला। अपने नाती का आप किसी सुश्री, शांत, सद्वंशजात कन्या से विवाह कर दीजिये और जब उन दोनों में प्रेम उत्पन्न होने लगे तब उसे किसी प्रकार भग्न कर दीजिये। इसके बाद अपने नाती को बालीगंज में किसी के यहां रखकर उसके लिए एक बांधवी का प्रबंध करा दीजिये। इस बांधवी को जब आपका नाती लाहौर या फर्रुखाबाद ले जाकर उससे विवाह कर लेगा तो उसकी कविता-व्याधि का उपशम हो जायगा। अथवा उसका विवाह किसी आधुनिक लेखिका-गायिका कन्या से कर दीजिये और एक कविता-पत्रिका प्रकाशित कराइये। इससे भी रोग दूर हो जायगा। इन कामों में झंझट समझें तो अपने नाती को रोज कण्ट्रोल की दूकान पर चावल या चीनी लेने भेजिये, एक सप्ताह में ही आराम होगा। सभी समाधान परीक्षित हैं, भय की कोई बात नहीं।

भवदीय

रोमांचित राय

(साइक्लोजिस्ट)

सभापति कौन हो !

सुना है, इस बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का विराट् अधिवेशन उदयपुर में होगा। सभापति-पद के लिए अखबार में नाम पेश किये जाने लगे हैं। गृही से सन्यासी तक उस लपेट में आ गये हैं। कुछ लोगों ने अपना नाम पेश करते रहने के लिए वैतनिक व्यक्ति रखे हैं। यह भी सुनने में आया कि हिन्दी के साहित्यिक इसी पुण्यकार्य में एक दूसरे के सम्पर्क में मित्र या विरोधीरूप में—आते हैं, यह भी सुना है। इसके बाद साल-भर तक किसी का किसी से कोई संपर्क नहीं रहता। मेरा कहना तो यह है कि हर महीने यह अनुष्ठान हुआ करे। ऐसा करने से साल में कम से कम १२ व्यक्ति तो सभापति हो ही सकेंगे। मेरा प्रस्ताव यह भी है कि जितने लोग सभापति होने योग्य हों या होना चाहें, सबको प्रतिवर्ष एक साथ ही सभापति बना दिया जाय। मिश्रबन्धुओंवाली प्रथा थोड़े विराट् रूप में होती रहे तो हर्ज क्या है !

योग्यता का मापदंड

सुना है, पहले सम्मेलन के सभापति वे होते थे, जिनकी साहित्य-साधना पुस्तक-रूप में सबके सामने रहती थी। बाद में यह हुआ कि जिन्होंने

हिंदी का प्रचार किया हो वे भी हों। मर गये बेचारे देवकीनंदन खत्री! नहीं तो वे भी चन्द्रकांता-संतति की गठरी लिए सभापति हो जाते और इसमें संदेह नहीं कि इधर एकाध साल के सभापतियों के भाषण से उनका भाषण अनुरंजक होता। ह्रास युग है भैया! धीरे-धीरे वह युग भी आवेगा, जब रेडियो का प्रथम बहिष्कार करनेवाला अपने साहस और त्याग तथा हिंदी की सम्मान-रक्षा के लिए सभापति बनाया जायगा।

एक सज्जन ने एक अखबार में प्रस्ताव किया है कि..... महाशय को इस बार सभापति पद 'सौंप' दिया जाय। क्यों 'सौंपा' जाय, इसके कारण उन्होंने दिखाये हैं। उन्हीं का पारायण कर मुझे अन्तरात्मा में ऐसी प्रेरणा हुई कि—मुझे अपना नाम स्वयं पेश करना चाहिये।

तो भाइयो! मैंने हिंदी का प्रचार बहुत किया है। अपनी सात सालियों को सवा सात दिनों में हिंदी की वर्णमाला पूर्णरूप से पढ़ा दी है। मेरे यहाँ रोज फूल देने जो मालिन आती है, उसे मैंने पढ़ाया है, अब वह बड़े रसीले प्रेमपत्र लिखती है। उनमें जो स्वाभाविकता होती है, वह साहित्यिकों के लिखे प्रेमपत्रों में नहीं देखी। उसके पत्र इस गुण के कारण हिंदी साहित्य की अमर संपत्ति होंगे। इतने ही से मैं विरत नहीं हूँ। आजकल मैं अकसर देहातों में जाता हूँ और वहाँ खेत-खलिहानों तक में स्त्रियों को घेरकर उन्हें शिक्षा देने का प्रयत्न करता हूँ। इस प्रयत्न में कई जगह मैं तिरस्कृत और लांछित तक हो चुका हूँ, पर डटा हूँ। छाती पर हाथ रखकर कहें आप लोग! आप में से कितनों ने कितने लोगों को अक्षर ज्ञान कराया है और इतना कष्ट तथा अपमान सहकर!

मैंने स्वास्थ्य की परवाह न करके साहित्य-साधना की है। मैं इसी बीच ६३॥ कौड़ी कहानियां लिख चुका हूँ। मुझे शोक है कि मैंने उन्हें लिखा, क्योंकि एक भी संपादक उन्हें समझ न सका और वे 'सधन्य-वाद वापस' की मुहर लग कर मेरे पास आयी हैं। मैं आलोचना में भी सिद्धहस्त हूँ। राधेश्याम की रामायण पर मेरा आलोचनात्मक पोथा आपने पढ़ा होगा। मैं ग्रामीणों में शिक्षा प्रचार चाहता हूँ—जड़ पर कुठाराघात। इसलिए मैंने बहुत सी नौटंकियाँ लिखी हैं जिनमें साहित्यिकता कूट कूटकर भरी है और जिनसे विचार उन्नत होंगे ही।

कुछ और भी

मैं प्रकाशक भी हूँ। आपने बचपन में तोता-मैना, सवाचार यार, शुक बहत्तरी आदि ग्रंथ-रत्न पढ़े होंगे। आपके पिता-पितामहों ने भी पढ़े होंगे, हर पीढ़ी अपने बचपन में उन्हें पढ़ती है। मैं उक्त ग्रंथ-रत्नों तथा ऐसों का प्रकाशक हूँ। ईमान से कहिये, ये पुस्तकें जितनी बिकती हैं, उतनी हिंदी की कौन—सी पुस्तक बिकती है? और बिक्री का अर्थ है हिंदी का प्रचार। वही मैं कर रहा हूँ। अति उदार हूँ। तुलसीकृत रामायण बेचकर लोग लखपती हो गये, उसे पढ़कर लोग पंडित हो गये, पर तुलसी का स्मारक क्या बना? मैंने अपने कई लेखकों के स्मारक उनके गांवों में बनवा दिये हैं। उनका इतना मान हुआ है कि दूर-दूर के धोबी तेली आदि—वहाँ आकर पूजा करते हैं और उनकी मनःकामना सिद्ध होती है, चढ़ावा लेखकों के घर वालों को मिलता है।

जीवित साहित्यकों का भी मैंने कम सम्मान नहीं किया है। जिसको

जब इच्छा हुई मेरे यहां ठहरा है। हिंदी के साहित्यकों में भुखमरों की कमी नहीं है, यह तो आप जानते ही होंगे। हिंदी के कई लेखक और कवि अपने साथ ऐसे-ऐसे जीवों को लाया करते हैं, जिन्हें वे न अपने घर रख सकते हैं, न होटल में। उनकी एकांत-साधना का मंदिर भी मेरी ही अतिथिशाला है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ऐसे कृतघ्न साहित्यिक अन्य भाषाओं में नहीं हैं। जाते वक्त सभी यह कहते हैं कि आपकी हिन्दी-सेवा और साहित्यिक सेवा हम सुवर्णाक्षरों में लिखेंगे, पर आजतक उन्होंने उसे काले अक्षरों में भी नहीं लिखा, अन्यथा मुझे यह सब स्वयं न लिखना पड़ता। कुछ लेखकों के ऐसे-ऐसे रोगों में मैंने उनकी सेवा की है कि क्या कहूँ! पर इसकी ओर भी उन्होंने ध्यान न दिया। इसके लिए उन्हें किसी दिन पछताना होगा।

सुना है, सम्मेलन में आजकल दलबंदी के दलदल में दलपति तक ऐसे फँस जाते है कि छकड़ा आगे बढ़ना कठिन होता है। मुझे यह पद सौंप देने से इसका खतरा भी न रहेगा क्योंकि तब मेरा ही एक मात्र दल वहाँ रहेगा और भगवान् चाहेगा तो फिर किसी दल को वहां घुसने की हिम्मत न होगी।

मेरी भीष्म प्रतिज्ञा

मैं इस बात की पूरी प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपनी लिखी हुई नौटंकियों तथा प्रकाशित अन्य पुस्तकों को सम्मेलन की किसी परीक्षा में न रखूंगा। मैं यह भी शपथ करता हूँ कि भविष्य में कुछ नहीं लिखूंगा और अपने किसी मित्र को वहाँ का परीक्षक नहीं बनाऊंगा, चाहे मित्रता टूट जाय।

मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। मैं सन्यासी होने की सोच रहा था। केवल एक ही प्रश्न मेरे सामने था कि अपनी संपत्ति किसे दे जाऊँ, कारण मूड़ मुड़ाने के बाद भी गृहस्थों से अधिक खटकरम करनेवाला संन्यासी मैं नहीं होना चाहता। अब समस्या का समाधान तो गया। कल मैंने 'फिर्पो' होटल में टका ब्रह्म की सहायता से द्रवित होकर साक्षात् साकार ब्रह्म का लाभ किया और उसका विसर्जन करने के क्षण प्रतिज्ञा की कि सब संपत्ति सम्मेलन को दे जाऊंगा। मुझे सभापति बनाने से मेरे जैसे शरीरों को हिंदी–हित के लिए अनिर्वचनीय प्रेरणा मिलेगी।

मैं जानता हूँ कि सम्मेलन अन्याय न करेगा। वह योग्य व्यक्ति को खोजेगा ही, और तब मैं ही उसके हाथ पड़ूँगा, यह अनुभव भी मेरा प्रत्येक अवयव कर रहा है। भारत के 'खोजी' लोगों पर मेरी अगाध श्रद्धा है। आप ही कहिये, भारत के बाहर किस देश ने समुद्र में से उच्चैःश्रवा निकाला, किसने हिमालय पर स्वर्ण-सरसिजों का अनुसंधान किया, किसने—बेन को मथा, किसने. पर छोड़िये; यह कथा क्या समाप्त होने वाली है! अतः मैंने स्वयं अपना पूरा परिचय दे दिया। इसके लिए सबको मेरा कृतज्ञ होना ही चाहिये।

अंत में यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे सभापतित्व में सबको अपनी अपनी करने का अवसर दिया जायगा, सभी लोग इसे खास तरह से नोट कर लें।

आशा है, आप लोग इस वर्ष का सभापतित्व मुझे 'सौंप' कर अपना जीवन सफल करेंगे। भविष्य की चिंता भी किसी को न करनी पड़ेगी, वह भार तो मेरे वृषभस्कन्धों पर है हीं।

पुनश्चः—सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मैं चन्दा—भीख नहीं—मांगने में सिद्धमुख हूँ। जहाँ कहीं नौटंकी जमा दूँगा, लोगों के ठट्ट लग जायंगे। उस समय बात की बात में हजारों इकट्ठे हो जायंगे। साथ ही नौटंकी की आय भी मैं सम्मेलन को ही दे दूँगा।

काशी ही 'कुरुक्षेत्र' है

आजकल नयी-नयी खोज और रिसर्च किस तरह किये जाते हैं, और किस तरह काल और स्थान का निर्धारण किया जाता है, प्रस्तुत लेख उसी का उदाहरण है। यह भी एक 'रिसर्च स्कालर' की खोज है। जो भावी खोजियों को प्रेरणा देगी।

*

आश्चर्य और शोक की बात है कि लोगों ने यह खोजने में तो जीवन लगा दिया कि राजा दिवोदास लुङ्गी पहनते थे या लँगोट, कबीर की दाढ़ी कै अंगुल लम्बी थी, तुलसीदासजी स्त्रियों को पशु समझते थे या उनके पतियों को, ज्ञानवापी का नाम ज्ञानमण्डप था या दालमण्डी, पहले लोग बाल छुरे से बनाते थे या हड़ताल लगाते थे, पर यह किसी ने यह न सोचा कि काशी में ही महाभारत युद्ध हुआ था और यही कुरुक्षेत्र है।

काशी का कुरुक्षेत्र होना उतना ही निश्चित है, जितना प्रकाशकों का अपने लेखकों की पुस्तकें अधिक छाप लेना, किसी परिषद् के मन्त्री का सभा हुए बिना ही उसके होने का समाचार छपवा देना या बाँस में बंसलोचन होना।

अस्सी के आगे कुरुक्षेत्र नामक तालाब यह बात पुकार पुकारकर कह रहा है कि काशी से कुरुक्षेत्रत्व अब भी नष्ट नहीं हुआ है ! इसके बाद अस्सी ही को लीजिये। इसका शुद्ध नाम था 'असिक'। यहीं सात्यकि ने भूरिश्रवा से असि युद्ध किया था। सात्यकि असियुद्ध में उस समय बेजोड़ थे, यह तो सभी जानते हैं।

भदैनी का शुद्ध नाम है 'भगदत्त पुरम्'। आसाम के राजा भगदत्त हाथी पर सवार होकर रोज यहाँ से प्रयाग जाते थे। प्रयाग में स्नानादि कर वे काशी आकर युद्ध करते थे और रात को ही आसाम चले जाते थे।

'सोनारपुरा' का नाम था 'स्वर्णपुरम्'। यहाँ पाण्डवों का खजाना था।

मदनपुरा का नाम था, 'मदनपुरम्' यहाँ कौरवों और पांडवों की सेना की तफरी के लिए वेश्याएँ रहती थीं। वह युद्ध धर्मयुद्ध था, शाम को युद्ध समाप्त होनेपर, प्रातःकाल तक के लिए शत्रुता समाप्त हो जाती थी और सब लोग चाहे जहाँ विचरते थे, यह बात तो सभी जानते हैं।

जंगमबाड़ी ही 'जयद्रथवाटी' थी। यहीं राजा जयद्रथ का खेमा था। जयद्रथ रंगीन तबीयत के आदमी थे; 'मदनपुरम्' के पास ही उन्होंने अपना खेमा गड़वाया था।

बिसेसरगंज उस समय 'विश्वरूपगंज' कहा जाता था। यहीं कृष्णजी ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखलाया था, जिसे देखकर अर्जुन हक्के-बक्के हो गये थे।

राजघाट पुराना 'राजघट्टम' है। यहाँ राजा लोग रात को मन्त्रणा करते थे। यहीं युधिष्ठिर को यह सुझाया गया था कि वे भीष्मजी से उनकी मृत्यु का उपाय पूछें।

यह तो कुरुक्षेत्र की सीमा बतायी गयी। अब आसपास के स्थानों का वर्णन किया जायगा।

राणघाट—इसका नाम है 'रणघट्टम्'। यहीं घटोत्कच लड़ा था। यहीं उससे सप्त महारथ त्रस्त हुए थे।

घोड़घाट—घोटकघट्टम्। यहाँ घोड़े पानी पीते थे।

दशाश्वमेध—यहाँ युद्ध समाप्त होनेपर युधिष्ठिरजी ने स्नान किया था। यहीं उनका अश्वमेध का घोड़ा भी घूमता-घामता आया था।

हाथीफाटक—यहां हाथी रखे जाते थे। युद्ध में एकबार उनका व्यूह भी बनाया गया था।

डौंड़ियाबीर—डिण्डिमवीर पुरम्। यहाँ रण प्रारम्भ सूचित होने के लिए बड़े-बड़े वीर डिंडम—डौंड़ी पीटा करते थे। डौंडी पीटना साधारण काम नहीं, इसके लिए वीरों की आवश्यकता होनी ही चाहिये।

कोतवालपुरा—कोट्टपालपुरम्। यहाँ किलेबन्दी के विशारद लोगों का खेमा था।

रामापुरा—यहाँ बड़े-बड़े मचान बाँधे गये थे। उनपर बैठकर स्त्रियाँ युद्ध देखती थीं।

चेतगंज—चित्रगंजम्। यहाँ विचित्र गंजा अर्थात् शराब की दूकानें थीं। सुरा, गैरेय, मद्य आदि सब कुछ यहाँ मिलता था।

सिगरा—इसका शुद्ध नाम था 'संगीर्ण' अर्थात् अंगीकृत। युद्ध करने के लिए कृष्णजी ने घटोत्कच को बुलवाया तो रहने के लिए उसे यही स्थान दिया गया। घटोत्कच के अंगीकार करने पर इसे संगीर्ण

कहा जाने लगा। घटोत्कच ने धौम्य ऋषि को चिढ़ाने के लिए लम्बी दाढ़ी भी रख ली थी।

पाँचोपण्डवा—यहाँ युद्ध के बाद पंचपाण्डवों की प्रतिमाएँ रखी गयीं थीं।

द्रौपदीकुंड—यहाँ द्रौपदी रोज स्नान करती थी। यह कुण्ड विशेषतः उन्हीं के लिए भीम ने रातभर में अकेले खोदा था।

दारानगर—यहाँ राजाओं की वे पत्नियाँ, धर्मपत्नियाँ (धर्म पिता की तरह) आदि रहती थीं, जो वियोग सहन न कर सकने के कारण युद्धक्षेत्र में भी लगी चली आयी थी।

राजादरवाजा—राजद्वारपुरम्। यहाँ आमोद-प्रमोदके लिए रात को 'राजा' लोग मिला करते थे। बहुत जलसा रहता था।

हड़हा—हरिद्रम्। यहाँ काम्बोज आदि के पीले रंग के सैनिक आदि रहते थे। हड़हा सराय में अब भी काबुली ही रहते हैं।

कतुआपुरा—कुक्कुरपुरम्। यहाँ सेना के कुत्ते रहते थे। कतुआपुरा यों बना है—कुक्कुरपुरम्, कुत्तापुर, कुतुआपुरा, कतुवापुरा।

नवापुरा—नारायणपुरम्। यहाँ नारायणी सेना रहती थी।

कमच्छा—कर्मकक्षपुरम्। यहाँ सेना आदि के लिए रसोई बनती थी।

चमरगलिया—चर्मकारगेहम्। यहाँ नीच—सेवा करने के लिए चमार आदि रहते थे। चर्मकार उपलक्षण है।

पितरकुण्डा—पितृकुण्डम्। युद्धक्षेत्र में जिनके पिता मर जाते थे, वे यहाँ उनका तर्पण करते थे।

भद्दकचहरी—(कचान् हरति इति कचहरी, नापितेत्यर्थः) बाल

बनानेवाली—कचहरी। यहाँ बड़े भटों, वीरों के रोज बाल बनाये जाते थे और यह काम स्त्रियों द्वारा कराया जाता था। यहाँ नापित पत्नियाँ रहती थीं और वे बड़े-बड़े के भटों बाल बनाती थीं। यह सौभाग्य साधारण वीरों को प्राप्त न था।

सप्तसागर—यहाँ सात समुद्रों का जल एकत्र किया गया था। युद्धांत में युधिष्ठिरजी द्रोपदी समेत यहाँ नहाये थे।

पिशाचमोचन—यहीं युद्ध में घटोत्कच मारा गया था और कौरवों का उस पिशाच से छुटकारा हुआ था। अब भी यहाँ भूत-प्रेत दूर किये जाते हैं।

चक्रपुष्करिणी—यहीं कर्ण के रथ का पहिया धँसा था और उसी समय यह गड़हा हो गया था। यह बाद में कर्ण के रक्त से भर गया था।

कहाँतक लिखा जाय, यहाँ के स्थानों का प्रत्येक नाम कुरुक्षेत्र की किसी घटना से सम्बद्ध है। कोई सज्जन इस विषय में पुस्तक लिखना चाहें तो मैं अपने ज्ञान से उनकी सेवा करूँगा। यह विश्वास दिलाता हूँ कि यह पुस्तक इस विषय की, भारतवर्ष में क्या, संसार में पहली पुस्तक होगी!

गण-तंत्र

[हमारे पाठक इस बात से निश्चय ही नाराज़ हैं कि 'क्रमशः' लिख कर, आगे के अंकों में यह कथा नहीं दी गयी। मूल पुस्तक के अनेक स्थानों की स्याही उड़ गई है, कहीं दीमक लग गयी है; और उन्हें ठीक-ठीक अनुमान कर पूरा करने के लिए तपस्या करनी पड़ी। इसी कारण कई अंकों में कथा न जा सकी। हमारे पाठक क्रुद्ध न हों। तपस्या भयंकर वस्तु है और उसके लिए मन को दृढ़ करने के लिए काफी हाउस, मोफेयर, कैपिटल तथा बनारसी बाग के बहुत चक्कर लगाने पड़े और काफी खर्च भी करना पड़ा। भगवान् की कृपा से इमामबाड़े की भूल-भुलैया में तपस्या पूरी हुई और तब लुप्त अक्षर पढ़े जा सके। तपस्या थोड़ी ही हो सकी, इस कारण पुस्तक का थोड़ा ही अंश पढ़ा जा सका। आशंका है कि कुछ अंकों के बाद फिर न रुक जाना पड़े। हमारे उत्सुक पाठक यदि आगे की तपस्या में सहायक हो सकें तो अत्यन्त कृपा हो!

पूर्व कथा

गणेश जी उत्पन्न हुए, सब देवता आये, शनिदेव के देखते ही

गणेश जी का सिर कटकर गिर पड़ा। महादेव जी ने गण दौड़ाये तो हाथी का सिर काट लाये जो गणेश जी के धड़ पर लगाया गया।

संड मुसंड सुत को हाथी के सिर वाला देख कर पार्वती जी कपार पीट रोती हुई अपने पति को भंगभट्ट, महालंठ आदि अपमान जनक शब्दों से सम्बोधित करती हुई बोली कि अब मैं अपने माता-पिता, देवताओं को कैसे मुँह दिखाऊँगी। पार्वती जी के वचन सुन गण जहाँ तहाँ पलायन कर गये, उन चाकरों के समक्ष अपने अपमान से उत्तेजित हुए शिवजी तृतीय नेत्र खोल कर बोले—तेरे माता पिता पत्थर हैं, उन्होंने तुझको शिक्षा दान की व्यवस्था नहीं की......

ऋषिउवाच

एवं श्रुत्वा कोपना चण्डिका सा
जाता सत्यं श्री महाचण्डिका हा!
देवाः देवीनग्रतः केऽपि कृत्वा
गुप्ता तस्थुः पादयोरन्तरेषु ॥

हे महाराज! है सो, ऐसा रुद्र का वचन श्रवण करि, सो चंडिका सत्य-सत्य महाचंडिका होती भई! हा हंत! अरु कछु देव जो हैं सो देवीन को अग्रे कहिये, अपने आगे करि के, उनकी दोऊ टाँगन के बीच मों घुसि कै बैठि गये।

देव्युवाच

हे त्रिचक्षो! महानंग! रे रे त्वं वृषवाहन!
हाथीसूंड़ो न त्वन्नेत्रे कदापि खटकिष्यति ॥

चद्रिका भाखती भई कि रे रे तीन आँखिनवारे! रे महानंगे! रे रे

बैल पर बसैया ! तुम तो स्वयं ऐसे कुरूप, कुचील हौ, तुम्हारी आँखिन मों हाथी को सूंड़ कदापि नाहीं खटकैगो।

अहं मतारी, ने लाडं न त्वं मापितुमर्हसि।

अहं पत्थरपुत्री स्यां, पेटे लालो धृतो मया !

रे ! मैं तौ मतारी कहिये माता, सो हौं। मेरे लाड-प्यार को तुम कैसे करि माप सकत हौ जो है सो ! मैं पत्थर-पुत्री होय सकती हौं, पर अपने या लाल कौ तौ मैं पेट में धारन करि चुकीं हौं।

फाँसी लगावयिष्यामि कूदिष्यामि पहाड़तः।

धतूरांच चबायिष्ये बदनामं करोमि त्वां ॥

रे रे ! मैं फाँसी लगावौंगी अथवा पहाड़ पर चढ़ि कै कूदि परौंगी, वा धतूरा चबाय कै प्राणत्याग करौंगी अरु मरि कै तुमकौ बदनाम करौंगी, है सो।

लातान् खाय्य च मुक्कां च लाठी-हूरांस्तथैव च।

दाबयन्तं च त्वां क्रोधाद् बापं मे जानयिष्यसि ॥

अरु मेरे बाप की लातन कौ खाइ कै, अरु मुक्कन की मार लहिकै तथा लाठी के हूरन सौं थुरिकै तुम मेरे बाप कौ जानौगे, जब सो बाप क्रोध करि कै तुम्हें अपने बोझ सौं दबाइकै चाँपैगौ।

मूसलं च करे कृत्वा झोंटा फैलाय्य दौड़ती।

पचास पुरुखान् माता गालिभिस्तारयिष्यति ॥

रे ! जो है सो क्या नाम करिकै, मेरी माता हाथ मों मूसर लै कै, झोंटा फैलाय कै, तुम्हारी ओर दौड़ती भई, तुम्हारे पचास पुरुखन कौ तारि देगी, है सो।

भागिष्यन्ति इमे प्रेता प्रेतिनीन रख्य मस्तके ।
बैलसिंहौ लगायित्वा होडं तेऽरभगिष्यतः ।

अरु ये तुम्हारे प्रेत, अपनी प्रेतिनीन कौ आपने मस्तक पर रखिकै पलायन करैंगे । अरु तुम्हारे ये बैल अरु सिंह होड़ लगाय कै चटपट भागि जायँगे; समुझि राखौ क्या नाँव करिकै ।

ऋषिरुवाच

सकलमिदमन थोशंभो श्रुत्वा च रुद्रः ।
त्तणमिव च मघोनः शस्त्रकेनाहताङ्ग ॥
द्रुततरमथ संज्ञां प्राप्य जज्वाल रोषात् ।
खरतरमिदमूचे तेन सावज्ञमुच्यैः ॥

ऋषि कहतु हैं—अनर्थ की आशंका उत्पन्न करनहारी यै बातैं सुनिकै, है सो रुद्र त्तण भरि इंद्र के शस्त्र अर्थात् बज्र के मारे लौं रहि गये । तानंतर जो है सो अत्यन्त शीघ्र ही उन्हैं होश जब आयौ, तौ वै क्रोध सों जरन लगे, अरु अत्यंत अवज्ञा सहित बड़े जोर सौं चिल्लाय कै, भयंकर बचन बोलते भये ।

———

काँव-काँव

लखनऊ से प्रकाशित 'स्वतन्त्रभारत' में 'काँव-काँव' स्तम्भ के लेखक स्वर्गीय बलदेव प्रसाद मिश्र थे। इस स्तम्भ की महत्ता सभी ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है। सुप्रसिद्ध उपन्यास सम्राट् श्री वृन्दावनलाल बर्मा ने लिखा है कि—'काँव-काँव' के व्यंगों पर मैं प्रायः अपनी हँसी की अंजलियाँ चढ़ाया करता हूँ। कभी-कभी तो भर-भर कठोटों! मेरी समझ में इतने चुटीले, सार्थक और सुन्दर व्यंग शायद ही किसी हिन्दी या अंग्रेजी पत्र में निकलते हों। अन्य भाषाओं की बात मैं नहीं कह सकता। सड़ी-गली कविताओं को हमारे यहाँ साहित्य की अभिधा दी जाती है। मैं तो 'काँव-काँव' की अनेक चोटों को अमर साहित्य की श्रेणी में निःसंकोच रख सकता हूँ।' श्री बर्माजी ने यह भी लिखा है कि 'काँव-काँव' का पुस्तक रूप में प्रकाशन होना चाहिये। यहाँ तक कि उन्होंने इसके लिए प्रकाशक ढूँढ देने का बोझ भी अपने ऊपर ले लिया है।

'काँव-काँव' से यहाँ जो चीजें ली गयी हैं, वह बेसिलसिले, बिना किसी चुनाव के ली गयी हैं, जिन चीजों को समय-समय पर दूसरे पत्रों ने अपने यहाँ लेख के रूप में उधृत किया था, इस शीर्षक के अन्तर्गत केवल उन्हीं का संकलन किया गया है।

काक-कोकिल-संवाद

किस्सा 'तोता मैंना' हर नयी पीढ़ी का गैर-सरकारी पाठ्य ग्रन्थ है। उसका सारांश यह है कि तोता-मैना दंपति लड़ गये और परस्पर पुरुष तथा स्त्री की बेवफाइयों के किस्से सुनाने लगे और यही करते-करते अन्त में गले लग पड़े। बाजारू किस्सा तोता-मैना का यही अन्त है। हाल ही में अरब में किस्सा तोता मैना का उत्तरार्द्ध प्रकाशित हुआ है। उससे पता चलता है कि गले लगने के बाद भी दोनों ने किस्से सुने-सुनाये। उनमें से एक का यहाँ हिन्दी में उद्धार किया जा रहा है।

*

तोता बोला—ऐ प्यारी! दुश्मनों में भी मेल हो जाया करता है। पैदायशी दुश्मनों में भी।

मैना ने कहा—ऊँ हूँ! मैं तो मान नहीं सकती।

तोता—देखो न! आज दोपहर को गर्मी के मारे साँप मोर की पाँखों में घुस रहा था।

मैना—साँप अंधा होगा, मोर की पाँखों को कुछ और समझा होगा।

तोते ने अपनी गर्दन के नीचे के बालों में इधर-उधर दो चार बार चोंच चलाकर कहा—और, शायद मोर भी अंधा होगा।

मैना ने आँखें नचाकर मुँह घुमा लिया और फुदक कर ७॥ इंच दूर जा बैठी। तोता दो उछाल में उससे जा सटा और बोला—सुनो, एक कहानी सुनाऊँ।

मैना ने एक आँख दो तिल बराबर बन्द की और सिर को ३७॥ डिग्री आसमान की ओर उठाकर पूछा—क्या?

तोते ने अपने पंख फड़फड़ाये और एक पंख मैना पर रख कर कहना शुरू किया—

भगवान बुद्ध का जमाना था! उस समय लक्खनपुर नाम का एक नगर था। उसमें बड़े-बड़े उल्लू निःशंक होकर चाहे जहाँ घुस जाया करते थे, चाहे जहाँ बैठ जाया करते थे, चाहे जहाँ अपनी बोली बोला करते थे। अहिंसा थी न! कोई उन्हें मारता न था। उन उल्लुओं के डर से कौवे बिचारों की जान आफत में थी। डरते-डरते निकलते थे, डरते-डरते बोलते थे। इतने पर भी कहीं न कहीं किसी उल्लू से मुठभेड़ हो जाती थी। उल्लू अगर कुछ और न कर पाता था तो दो-चार घूत्कार कर ही देता था।

यह गति देखकर एक अनुभवी कौवे ने सब कौओं को जमा किया और बोला—भाइयो! ये उल्लू हमारी जान के गाहक हैं, पैदायशी दुश्मन हैं। इन्हें कोई मारता नहीं, हमें कोई बचाता नहीं। इसलिए, अपनी जान के जब लाले पड़े हैं, तो उसे बचाने के लिए कुछ सोचना चाहिये।

एक नौजवान कौआ बोला—हमें उड़ने में उस्ताद बनना चाहिये। हमारे पूर्वज सैकड़ों तरह की उड़ान जानते थे। हम लोग दो ही चार जानते हैं। अगर हम सब जान जायँ तो उल्लू कुछ न कर सकेंगे।

अनुभवी कौए ने कहा—बात ठीक है। लेकिन उड़ान के लिए ताकत भी चाहिये। इन उल्लुओं के मारे हम उड़ना ही भूल जाने वाले हैं। उड़ने की कोई जगह भी तो हो! जहाँ देखो वहाँ उल्लू!

दूसरे नौजवान ने कहा—हम लोग बिखरे पड़े हैं। हमें कहीं एक जगह डेरा डालना चाहिये। उल्लुओं को देखिये! नदी पार वह जो बड़ी सी इमारत है, उसमें एक उल्लू घुसा और उसने वहाँ उल्लू भरना शुरू किया। अब वहाँ जिसे देखिये, वही उल्लू है।

तीसरा नौजवान बोला—उल्लू अब अपनी बिरादरी की करनी-करतूतों का लेखा-जोखा रखने लगे हैं, उन्हें हर जगह खुद ही सुनाते हैं और एक उल्लू दूसरे की पीठ ठोकता है।

अनुभवी ने कहा—माना! वे जो चाहें करें। बात यह है कि हमें भी संगठन करना चाहिये।

एक नौजवान बोला—कोयलों को भी आड़े आना चाहिये। उनपर हमारा हक है।

अनुभवी ने कहा—हक-वक की बात ताक पर धरो! वे हमारे साथ हो जायँ, यही बहुत है। उनमें कुछ त्रुटियाँ हैं, कुछ गलतफहमियाँ हैं। उन्हें दूर करके वह हमारा साथ दें तो उल्लुओं से ज्यादा अच्छी तरह मोर्चा लिया जा सकता है।

दूसरा नौजवान बोला—मैं अभी बुला लाता हूँ दो-चार को।

अनुभवी ने कहा—कोयलों के पास जाने की जरूरत नहीं। गाय का रँभाना जितनी दूर सुन पड़े, उतनी दूर पश्चिम में चला जा। वहाँ एक पुंस्कोकिल रहता है। उसे अगर राजी कर लावे तो कई कोयल उसके साथ लगी चली आवेंगी—उन्हें बुलाना न पड़ेगा।

दूसरे नौजवान ने कहा—वह जो अपने को लब्ध-प्रतिष्ठित कहता है—

अनुभवी उखड़ पड़ा—लब्ध प्रतिष्ठ कह रे!

दूसरा नौजवान बोला—माफी चाहता हूँ। मैं उनसे यह बार-बार सुनकर...

अनुभवी बोला—यह उल्लुओं की भाषा है। वह छोकरा उनसे सुन सुनकर अपने को यही कहने लगा। हर वक्त उन्हीं से घिरा रहता है है न!

तोता बोला—ऐ प्यारी! गरज यह कि वह नौजवान कौआ उस पुंस्कोकिल को समझा-बुझाकर ले आया और सचमुच उसके आगे पीछे ५,६ कोयल फुदकती-फुदकती आई।

बुलाने की वजह से पुंस्कोकिल फूला हुआ था और कोयल साथ होने से अकड़ा हुआ भी था।

सामने आते ही अनुभवी कौए ने पंजा उठाकर कहा—एहि एहि गच्छ! स्वागतं ते।

पुंस्कोकिल जल-भुन गया। संस्कृत न जानने से उसने समझा कि कौए ने खास काक-भाषा में कोई गाली दी। वह छूटते ही बोला—'एहि एहि' तू और तेरा कुनबा! यह क्यों होने लगा! ऐसा स्वागत—नहीं चाहिये।

अनुभवी ने पुचकारा तो पुंस्कोकिल फिर बोला—तू उल्लुओं की लात खाने लायक ही है। तेरी ठेकेदारी नहीं चलेगी। मैं लब्ध प्रतिष्ठित हूँ। मेरे रहते तू कहीं सभापति नहीं हो सकता।

एक कोयल तैश में आकर बोली—तू ढोंगी है। तेरी कलई अब खुल जायगी। तेरी गद्दी छिन जायगी।

दूसरी ने फरमाया—तेरा मान कब तक? जब तक हम न बोलें!

तीसरी ने मुँह खोला—तू सब क्षेत्रों में ठेकेकदार बनना चाहता है!

अनुभवी बोला—शान्तं पापं, शान्तं पापं, सुनो—

पुंस्कोकिल बोला—अरे रे! मैं शान्त शिष्ट पुंस्कोकिल! मुझे पाप कहता है।

अनुभवी ने कहा—बेटे सुन!

पुंस्कोकिल तड़पा—बेटे!

अनुभवी बोला—तो और क्या कहूँ! मेरी उम्र देख, अपनी देख!

एक कोयल ने कहा—अरे, अपनी बोली देख, अपना मुँह देख!

दूसरी बोली—अपना रंग देख!

तीसरी बोली—अपना ढंग देख!

पुंस्कोकिल तड़पा—तू कहीं बुलाया नहीं जाता।

अनुभवी ने कहा—माना। सिर्फ श्राद्ध में पूछ होती है।

एक नौजवान कौआ बोला—इन्हें तो उसमें भी कोई नहीं पूछता।

अनुभवी उस पर बिगड़ा—चुप!

पुंस्कोकिल ने कहा—तुझमें एक भी गुण नहीं!

अनुभवी ने कहा—हाँ, जितने हैं, वे नहीं के बराबर हैं। खासकर तुम्हारे सामने।

एक कोयल बोली—ठीक ही तो है।

बेचारा अनुभवी सिकुड़ कर दीन भाव से बोला—सत्य देवीजी! आप अपने गुण कहिये।

कोयल—हमारी बोली देखो। पंचम है।

अनुभवी—सत्य है। सदा एक सी।

कोयल—हमें लोग पिंजरों में रखते हैं।

अनुभवी सत्य वचन। और?

कोमल—वसंत का आगमन हमें तुरन्त मालूम हो जाता है।

अनुभवी—और उसका जाना!

कोयल—वह भी। अधूरा ज्ञान हममें नहीं है।

अनुभवी—धन्य धन्य! और कुछ?

कोयल—हमारी वाणी।

अनुभवी—वाणी और बोली शायद एक ही चीज है।

इस पर पुंस्कोकिल और सब कोयल एक साथ चिल्लायीं—कौन कहता है, कौन कहता है?

अनुभवी ने हाथ जोड़ कर कहा—दो हैं, दो हैं। अभी जो कह रहे हो वह वाणी और वसंत के आगमन पर जो पंचम—वह बोली। क्यों?

पुंस्कोकिल ने कहा—हे भगिनियो! उपेक्षा कर, अपनी नवीन प्रतिभा से ही इसका उत्तर देना हैं। बस अपने पूर्वजों का आशीर्वाद भर लेना है।

अनुभवी ने पूछा—पूर्वज क्या ?

पुंस्कोकिल—रे मूर्ख ! पूर्वज क्या ? जिन्होंने हमें उत्पन्न किया, जिन्हों ने हमें ज्ञान दिया, जिन्होंने.........

अनुभवी ने कहा—आशीर्वाद, आशीर्वाद ! इसीलिए तो बुलाया था बेटा ! बात मान, कहना सुन, बताये रास्ते पर चल ! मेरी जात ने तेरी जात को पाला है। हम तुम्हारे पिता नहीं तो धर्मपिता तो हैं हीं ! मानते हो ? किसने तुम्हें उड़ना सिखाया है ?

तोता बोला—ऐ प्यारी ? यह सुनकर पुंस्कोकिल और कोयल एक दूसरे को देखने लगीं, सब धरती की ओर देखने लगीं।

बरसो घनश्याम इसी वन में

कालिसास के समय लोगों को इतना मालूम हो गया था कि बादल बनता है—धुंए, तेज जल और हवा से। ये सब मिलकर एक कारण होता है बादल बनने का, जैसे शक्ति, निपुणता अभ्यास, ये तीनों मिलकर कविता रचना का एक कारण होता है—अलग-अलग नहीं।

पहले बादलों को भी वक्त पर उत्पन्न हो जाने और हर जगह बँधे समय पर पहुँच ज़ाने की आदत थी। अब न लोगों की बात का ठिकाना, न बादल का ठिकाना। पहले लोग बादलों पर आश्रित रहते थे, बादल लोगों पर! पहले किसान, अभिसारिकाएं, संन्यासी, बिरही, बादलों का मुंह देखा करते थे और बादलों को भी कवियों कि कलम में उतर आने का, कामिनियों की आँखों में छाकर उनका रंग गहरा कर देने का, बिरहियों को आठ आँसू रुला देने का चाव सा रहता था। अब लोग नकली बादल पैदा करके नकली वर्षा करने पर कमर कसे बैठे हैं तो बादलों ने भी मुँह मोड़ लिया है।

पहले बादल उमड़ते थे—विरहियों के हृदयों के साथ। वे बरसते थे—उनकी आंखों के साथ। वे गरज़ते थे—उनकी हृदय की पीड़ा के

साथ। बादल किसी कोने देख पड़ा कि नायिका को सखियां बहलाना शुरू करती थीं—यह बादल नहीं है—विंध्यपर्वत पर आग लगी है, उसीका धुआं है। या यह बादल नहीं, कोई हाथी चला आ रहा है। यह बिजली नहीं, उसी हाथी के दाँत चमक रहे हैं। यह गरज नहीं, हाथी ही चिग्धाड़ रहा है। तुम बेकार सांसें न भरो, आंसू न गिराओ। अभी तुम्हारे प्रियतम के आने में काफ़ी समय है।

कवि नरकट के कलम छील कर भोजपत्र का अम्बार जमा कर मेघगान गाने को तैयार बैठे रहते थे। कालिदास का 'मेघदूत' ऐसे ही अवसर की सृष्टि है—मेघ-गान! संस्कृत-साहित्य मेघ कविता से बहुत समृद्ध है। अब सभ्यता का प्रसार है। उसका सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि किसीको समय नहीं। किसे समय है कि बादलों का कजरारापन, उसका सिन्दूरीपन, उनकी स्निग्धता, उनका उमड़ना, उनके बरसने के ढंग देखे! मेघ की कविता समाप्त हो गयी। उसकी उपयोगिता रह गयी। वह न हो तो उसका नाम लेने की फुरसत भी किसे? शहरी लोग तो ज्यादा पानी बरसने से घबराया करते हैं। सिनेमा जाने में, काफ़ी हाउस पहुँचने में वर्षा से विघ्न पड़ता है। पैसा पास हो तो फोन कर देने से दूकानदार घर अन्न पहुंचा जाय। मेघ से अन्न का सम्बन्ध सोचने की चिन्ता किसे!

घूंघट जब था तो उसके भीतर झांकने को मन ललचता था। अस्पष्टता हो तो रहस्य है। अस्पष्टता की जिज्ञासा ही रहस्य का उद्घाटन करती है, उसमें प्रवृत करती है। काली रात काले मेघ उमड़े हुए 'कोई' काले ही वस्त्र पहन कर अभिसार को निकली। सौ-पचास आदमी (जिन्हें समय ही समय था) पीछे हो लिये। मनाते चले जा रहे हैं—'पौन मया

करि घूंघट टारै, दया करि दामिनी दीप दिखावै' हवा दया कर घूंघट हटा दे, बिजली चमक कर दीपक का काम दे दे ! सभ्यता कम थी, पर इतनी थी कि लोग किसी बहाने न घूंघट खींच लेते थे, न चकमक रगड़ कर उजाला करते थे, न बोली-आवाजा कसते थे, न किसी के काम में बाधा डालते थे। कालिदास ने लिखा है कि वार-नारियां चौराहों पर सो जाती थीं तो हवा भी उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त न करती थी।

पहले वर्षा होते ही रास्ते रुक जाते थे। जो जहाँ रहता, उसे वहीं चार मास रुक जाना पड़ता। ऊँचे नीचे रास्ते, जंगल, हिंस्र पशु, सर्प, चारा और जल ही जल ! किसकी जान भारी थी कि निवास छोड़ कर एक पैर भी बढ़ाता। न पंचवर्षीय योजना थी, न वर्षा को चीर चलती रेल या मोटर, न स्टीमर, न डाक बंगले, न धर्मशालाएं। चरणदासजी की जोड़ी ही सर्वोत्तम यान थी और गाँवों में टिक सकने की व्यवस्था थी—वह भी गांव के मंदिरों में। अपरचित को घर में कौन टिकाता ! ग्राम-देवियों के मन्दिरों को ही, पन्थ-निवास या धर्मशाला समझिये। रास्ते में न चाय खाने, न होटल, न रेस्ट्रां, न सिनेमा, न स्ट्रेंजर होम'। यात्री क्षितिज की ओर ताकता, ग्राम, देवियों के मन्दिरों की पताका देख पाने की प्यास आंखों में भरे चलता रहता। रास्ते में सांझ पड़ जाना और मौत का टूट पड़ना समान था। सभ्यता की जय हो। ये सब कष्ट नहीं हैं। न बादल ताकने की जरूरत, न उसका गान सुनने की ! वर्षा का उपद्रव रेडियो खोलकर काटा जा सकता है !!

——

जिन से मुझे बल और प्रेरणा मिलती है

१५ अगस्त की आधी रात को मित्र लोग चले गये तो रात अपनी हुई। विधाता की कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि बीती जिन्दगी का लेखा-जोखा मिलाने लगे। देखा कि आधी जिंदगी बीत गयी, पर उसमें अपने मतलब की बात कम हुई और लोग अपना मतलब ज्यादा साध गये।

सोचा—'आगे की सुधि लेय—

बाणभट्ट ने लिखा है—

कुल्या जलधिः,

स्थली च पातालम्।

वल्मीकश्च सुमेरुः

कृत-प्रतिज्ञस्य धीरस्य !'

यानी जो कोई कुछ करने की ठान ले—उसके लिए पूरा पृथ्वी-मण्डल आंगन हो जाता है, पाताल सपाट मैदान हो जाते हैं और सुमेरु पर्वत बांबी हो जाता है। हमने भी मन में पाँच सात गांठे दी कि अब कुछ करके ही रहेंगे।

मन को मजबूत करने के लिए उन लोगों की ओर नजर दौड़ाई, जिन्होंने बहुत कुछ कर डाला है और करते जा रहे हैं। सबसे पहले 'सच झूठ की राम जानें' नामक दैनिक अखबार के संपादक श्रीमान् विजयानन्द जी याद आये। दृढ़ प्रतिज्ञ हो तो ऐसा! पैसा कमाने के मैदान में उतरे तो कर्म कुकर्म की ओर से आँखें मूंद ली। कमाई के अन्तिम काल में दलाल थे। उसी समय एक अखबार वाले से भेंट हुई तो सम्पादक बनने का निश्चय किया और बन दिखाया। दुनिया बकती फिरे कि पत्रकारिता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं,—वह तो सम्पादक हैं! उनकी याद से बहुत बल मिला।

फिर एक सज्जन याद आये जो पहले कांग्रेस की सभाएँ जहाँ होती थीं, वहाँ सबसे पहले पहुँच कर दरियाँ बिछाया करते थे, बाद वहीं खड़े होकर भाषण सुनते थे! एक बार लोगों ने मजाक में उनका भाषण करा दिया। उसके बाद वह खुद भाषण करने लगे—कोई सुने, चाहे उठके चला जाय। जेल भी जाने लगे। एक नेता के चपरासी हो गये। फिर दूसरे के सेक्रेटरी। फिर एक मन्त्री के मुसाहब! अब वे सभा-सचिव हैं। उनका लक्ष्य है—राष्ट्रपति होना। उनका कहना है कि खुदा हमें उम्र दे दे—हो तो हम सब जायेंगे। इनकी याद से उत्साह का इंजेक्शन-सा लग गया।

एक और सज्जन याद आये। आपने शुरू में ब्रजभाषा की कविताएं रटी और तब उनके चरणों में अपने शब्द जहाँ तहाँ जोड़कर, ब्रजभाषा के कवि हुए। यही—लीला कर के खड़ी बोली के कवि हुए। संस्कृत के काव्यों के अनुवाद पढ़ कर और उनके भावों को अपनाकर महाकवि हो

गये। जनसाधारण ने वाह-वाह की, सरकार ने पुरस्कार दिया। जानकार लोग कुछ भी कहते रहें—वे महाकवि हैं, सरकार से पुरस्कृत हैं, कवि-सम्मेलनों में जरूरी चीज हैं।

एक साहब याद आये, जिनकी माता एक साहित्यिक के यहाँ रसोई करती थीं। साहित्यिक की कृपादृष्टि से पुत्र का अक्षरारम्भ हुआ और वह लुढ़कते-लुढ़कते एम० ए० हो गया। अपने गुरु की थीसिस झाड़कर वह 'डाक्टर' हो गया और लोगों के चरण छूने के प्रताप से प्रोफेसर हो गया। उसकी एकमात्र अभिलाषा यह थी कि लोग हमारे चरण छुएँ। लगन की बात है। वह पूरी हो रही है। इनकी उन्नति के क्रम पर नजर पड़ने से भी सन्तोष हुआ।

अन्त में नजर पड़ी कांग्रेस के एक प्रमुख नेता पर। १५ अगस्त के उपलक्ष्य में, उनका 'कांग्रेसजनों को संदेश' सामने धरा है। पहला वाक्य है—'१५ अगस्त १९५४ को हम भारतीय स्वतन्त्रता की आठवीं वर्ष गाँठ मनाने जा रहे हैं' हमारे ख्याल से यह १५ अगस्त, स्वतन्त्रता की सातवीं वर्षगाँठ है और आठवाँ जन्म दिन। नेताजी के इस वाक्य से हमें बहुत बल प्राप्त हुआ। 'रिग्वेद-रहस्य' के लेखक अगर वर्षगाँठ और जन्म-दिन को एक ही चीज समझते हैं तो हम जब, जो भी लिखें, कोई टोकेगा नहीं। हम तो तुरन्त कह देंगे—हम मूर्ख आदमी, हमने तो रिग्वेद भी नहीं पढ़ा है। नेताजी शतायु हों, हम जैसों का बल बढ़ाते रहें।

हमें उन लोगों की ओर देखने से भी बल मिल रहा है, जो दस-बीस फर्जी संस्थाओं के कार्य-विवरण नियमित रूप से छपाते रहते हैं, जो लोगों को उत्साहित कर, खर्च देकर, अपना अभिनन्दन कराते हैं, जो साहित्य

की सींग पूँछ तक न जानकर भी साहित्यिक हैं, जो किसी कवि की कविता सुनकर और उसे जरा बदल कर, उस कवि को ही सुनाते हैं, जो बीसों साल से एक ही कविता सुनाते आते हैं। हम इन सब के कृतज्ञ हैं और शपथपूर्वक कहते हैं कि हम भी अब कुछ हो के ही रहेंगे। बस, भगवान हमें अब से सौ बरस और जिंदा रखे और तीन पाव निर्लज्जता दे दे। नमूना अगली १५ अगस्त को देखियेगा।

सौन्दर्य प्रतियोगिता

प्रदेशीय विधान परिषद में सौंदर्य-प्रतियोगिताओं पर जोरदार बहस हुई। विशेषता यह रही कि कांग्रेस-जनों ने पार्टी अनुशासन को ताक पर धर कर अपने विचार प्रकट किये।

—पार्टी के हाथ दिमाग बेचा जा सकता है, ऊपरी दिल पर भी हाथ रखने दिया जा सका है, लेकिन एकदम अन्दरूनी दिल की बात जहाँ हो, वहाँ दिल की पुकार एक नहीं सुन सकती—पार्टी कुछ कहे या कोई कहे।

प्रस्ताव यह था कि ऐसी प्रतियोगिता न हों, क्योंकि यह भारतीय संस्कृति के विरुद्ध हैं।

—संस्कृति तो बदलती रहती है। पहले देश में असूर्यपश्या हुआ करती थीं—जिन पर सूरज भी नजर न डाल सके। औरतें घाम में भी नहीं निकलती थीं कि कहीं सूर्य देव के कर (किरण) शरीर पर बड़ जायंगे। आज की देवियाँ तो सूर्य को चुनौती दे सकती हैं।

एक साहब ने कहा कि एसी प्रतियोगिता का संचालन स्त्रियाँ ही करें और उन्हीं के सामने वे हों!

—ऐसी प्रतियोगिताओं पर पुरुष विश्वास न करेंगे और, हमारा ख्याल है कि ऐसी प्रतियोगिताओं में कोई शामिल भी न होगा। बाबा तुलसीदास कह गये हैं।—'मोहे न नारि नरि कर रूपा' यह भी काबिले गौर बात है।

एक इतिहासज्ञ ने कहा कि प्राचीन और मध्यकाल में स्त्रियों की सुन्दरता का मापदंड दूसरा था। स्त्रियों की सुन्दरता पतियों के लिए थी।

— आप कहना क्या चाहते हैं? साफ कह दीजिये। ऐसा न हो कि देवियाँ आपके घर धरना दें। जल्द बतलाइये, इस युग का क्या मापदंड है!

एक साहब ने कहा कि अगले जमाने में भी सौंदर्य प्रतियोगिता होती थी—स्वयम्बर इसका उदाहरण है।

कुछ दिन खोपड़ी पर का तेल लगाइये और लाल मिर्च सूंघिये। स्वयंवर इसलिए होता था कि एक ही राजकुमारी से अनेक राजा यदि विवाह करना चाहते थे तो मामला स्वयंवर से निबटाया जाता था।

एक देवी जी ने कहा कि भारत से विदेश जानेवाले कुछ युवक वहीं विवाह कर लेते हैं। उन्हें बताया जा सकता है कि इस देश में भी सौंदर्य की कमी नहीं। अतः प्रतियोगिता हो!

—यह सुझाव हमें बहुत पसन्द आया। अब देवीजी ऐसा करें कि सौंदर्य का एक अलबम नाम-पते सहित छपवा डालें और विदेश जानेवाले युवकों के पास एक एक भिजवा दिया करें। अलबम पर आगे-पीछे हनुमान और विभीषण के चित्र रहें तो और अच्छा!

एक साहब ने कहा कि प्रतियोगिता विदेशी ढंग से न हो!

—यह बात हमें सबसे ज्यादा पसन्द आयी। हमारे संपूर्णानन्द जी ने बनारस में एक प्रदर्शनी कराई थी, उसमें सब चीजें थीं, जिन्हें स्त्रियों के अंगों से मिलती-जुलती कहा जाता है। जैसे हाथी से चाल, भिड़ से से कमर वगैरह समझी जाती है। हमारा सुझाव है कि प्रतियोगिता भारतीय ढंग से हो—सम्पूर्णानन्दजी भी उसके निर्णायकों में रहें। भिड़, भौंरे, सेवार, तीर, कमान वगैरह चीजें उनके पास इकट्ठी कर दी जायं। प्रगतिशील लोग कद्दू, टमाटर, लम्बे गुब्बारे वगैरह पहुचा दें।

अन्त में सौन्दर्य प्रतियोगिता पर रोक लगाने का प्रस्ताव बहुमत से गिर गया।

—मतलब यह कि अधिकतर सदस्य सौंदर्य प्रतियोगिता के हिमायती हैं—बाकायदा नाप-जोख के साथ! लेकिन राजर्षि के तीसरे नेत्र का भी ध्यान रहे!!

——

नई पसन्द पुरानी पसन्द

प्रदेश की विधान परिषद् में 'अश्लील पहनावा बिल' पर जोरदार बहस हुई। बिल में कहा गया था कि ऐसा पहनावा उचित नहीं, जिस पर किसी जीवित या मृत व्यक्ति का चित्र हो या देवी-देवताओं या पौराणिक चित्रों के आकार या निशानों के प्रतीक हों।

—अपनेराम का विचार है कि प्रायः सभी लोग किसी न किसी राजनीतिक पार्टी से संबद्ध हैं। वे कपड़ों पर अपनी पार्टी के चुनाव-चिन्ह छपवा लिया करें।

बिल का ध्येय यह बताया गया कि युवक ऐसे कपड़े पहन कर आम जगहों में न निकलें, जिन पर अभिनेत्रियों की सूरतें छपी होती हैं।

—मान लीजिये, कोई अपनी बीबीकी छपवा ले तो यह अश्लीलता होगी या पत्नी-भक्ति ?

आपने राम का कहना है कि इन बातोंको रोकने के लिए बिल की क्या जरूरत ? भारत सरकार देश की मिलों को ऐसे कपड़े न बनाने को कह दे और विदेश से ऐसे कपड़े न आने दे। झगड़ा खतम !

एक साहब ने कहा कि उक्त तसबीरों वाली पोशाक पहनना जनानापन है। हमें इसे रोकना चाहिये।

—यह तो जनानापन ही है। लखनऊ में न जाने कितने जनाने हैं। उनके लिए भी किसी 'बिल' की तजवीज होगी!

बहुत से लोगों की चाल जनानी होती है, बहुतों की बात जनानी होती है, बहुतों के काम जनाने होते हैं। अजी, कहाँ-कहाँ 'बिल' तैयार कीजियेगा?

एक साहब ने फरमाया कि अश्लीलता तो युवतियों को भी सुधारने पर ही दूर हो सकेगी।

—इस जमाने का एक बड़ा अस्त्र पिकेटिंग है। स्कूल-कालेजों के फाटकों पर, मेलों में, उत्सवों में पिकेटिंग शुरू कर दी जाय। वालंटियर बहुत मिलेंगे।

एक साहब ने कहा कि लड़कों में यह बीमारी (फैशन की) लड़कियों से फैली। तमाम युनिवर्सिटियों और कालेजों में रोक लगनी चाहिये।

—बहुत मुश्किल है। लड़कियाँ टाट पहनना शुरू कर दें तो भी तो काम न चलेगा। कालिदास फरमा गये हैं—'किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्" अर्थात् सुन्दर लोग चाहे जो पहन लें, वही अच्छा लगता है।

आधुनिक मनोविज्ञान का कहना है कि कुरूप लोग ही अपने को सजाने पर ज्यादा ध्यान देते हैं। इस बात का ध्यान बिल बनानेवालों को रखना चाहिये। क्या कुरूप लोग मर ही जायँ।

एक श्रीमतीजी ने कहा कि पुराने जमाने में पुरुषों का पौरुष देखा जाता था। तब पुरुष दाढ़ी-मूँछें रखते थे!

—यह कुंजी तो स्त्रियों के हाथों में है। लड़कियाँ बिना मूँछोंवालों से विवाह न करें और पति यदि मूँछें मुँड़ा ले तो तलाक दे दें। फिर भारत में पौरुष आ जायगा।

—अपने मौलाना साहब का कहना है कि सिरीमतीजी की बात एकदम गलत है। हाल ही में लखनऊ में, प्रांतीय रक्षकदल के खेलों में शरीक होने एक साहब आये थे। उनकी मूँछें शायद चार फुट की थीं। हमने इस बात का जिक्र कई कुमारियों और सिरीमतियों से किया, लेकिन किसी ने ध्यान न दिया, बल्कि मूँछों का मजाक किया। पुराना जमाना गया, मूँछें गयीं—यह सच है। लेकिन उस जमाने की पसन्द वाली औरतें भी आज एकाध ही नजर आती हैं।

——

स्वच्छ काशी

विनोबाजी इस बार चौमासे में बनारस में रहे और भू-दानयज्ञ का काम करते रहे। चौमासा बीतते बीतते उन्होंने 'स्वच्छ काशी' आंदोलन छेड़ा है! अपने राम को याद आ रहा है कि अगले जमाने में राजा लोग चौमासे भर तैयारी करते थे और शरत् प्रारम्भ होते ही दिग्विजय के लिए निकल पड़ते थे!

विनोबाजी की बात बहुत अच्छी है। इससे हम इनकार नहीं करते—शायद बनारसवाले भी न करें। मगर, विनोबाजी ने जिस काम का बीड़ा उठाया है, उसे पूरा करना टेढ़ी खीर है।

बनारस में हमारा जन्म है, शायद कुछ काल बाद वहाँ 'मरणं मंगलं' भी दिल में बैठ जाय। वहीं अपने राम बहुत दिनों रहे हैं, वहाँ की गलियों में गोली खेले हैं, छतों पर कनकौए उड़ाये हैं, सड़कों पर दौड़ मारी है, पार में भांग छानी है, चौक में टहलान दी है। मतलब यह कि वहाँ जो कुछ करणीय है—सब किया है और वहाँ की राई-रत्ती जानते हैं। इसीलिए कुछ कहने का अपना हक समझते हैं।

बनारस से, वहाँ के निवासियों का यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि

वे गन्दे रहें, गंदगी फैलाएँ। यह सनातन अधिकार है। जो लोग काशी में जाकर रहने लगें, वे काशीवासी तभी माने जाते हैं, जब वे अंगोछा या लुंगी पहनने लगें, पार में भांग छानने और निबटने लगें, गलियों और सड़कों पर चाहे जहाँ बैठकर पेशाब करने लगें और चाहे जहाँ पान की पीक पिच से फेकने में संकोच का अनुभव न करें। यह सब जो करे, वह बनारसी और यह सब करना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है।

बनारसी की सबसे बड़ी पहचान है—पान का अत्यधिक सेवन और धोती, कुर्ते पर पान के दाग! जो चीज पहचान है, लक्षण है, उसका तो होना ही जरूरी है। बनारस के बड़े-बड़े रईसों को इस पहचान या मुहर लगे कपड़े पहने, लाट साहब के दरबार में भी देखा गया है। विश्वनाथ के मन्दिर में भी और महफिल में भी। रईसों का एक लक्षण है—मगही पान खाना! पान खाने को वहाँ पान घुलाना कहते हैं। अर्थात् दस-पाँच बीड़े पानों को तम्बाकू, सुपारी और चून के साथ गाल और दाँतों के बीच दबा कर धीरे-धीरे कुचलना और रस को मुँह में ही जमा करना— उसे निगलना या थूकना नहीं। कुचलना बहुत अभ्यास-साध्य और योगियों के योग जैसा काम समझिये। चार बीड़े पान की यह क्रिया दो घंटे में समाप्त होती है। तो, पान जरा घुल जाने पर उसकी पहली पीक थूक दी जाती है ताकि तम्बाकू का 'निकोटिन' बहुत-कुछ निकल जाय, पेट में न जाय। अतः एक पीक के लायक पान-रस मुँह में जमा होने पर उसे थूकने के लिए बनारसी व्यक्ति उचित स्थान की तलाश शुरू करता है।

बनारस में गलियाँ पत्थरों से पटी हुई हैं, उन पर एकाएक थूक

देने से अपने ही पैर और धोती पर छींटे पड़ जाने का डर रहता है, अतः किसी ऊँचे स्थान से नींचे को ओर थूकना या किसी दीवाल पर बगल से पीक फेकना निरापद है। अतः लोग चबूतरे पर बैठ कर या किसी सीढ़ी पर चढ़कर गलियों में थूकते हैं और बगल से दीवालों पर। काशी की गलियों के मकानों की दीवालें कमर भर ऊँचे तक, एकदम लाल देख पड़ेंगी। आखिर, पहली पीक थूकने लोग कहाँ जायँ। अपने को बचाकर कहाँ थूकें ? और कोई खास स्थान ही बना देने से कैसे काम चलेगा ? न जाने कहाँ पीक थूकने लायक तैयार हो जाय। तैयार हो जाने पर, उसे मुँह में क्षण भर भी रखा नही जा सकता, यह पान सेवन का एक रहस्य है। अतः गली और दीवालें ही उचित स्थान हैं। यदि दीवाल सफेद हो, चूना हुआ हो, तो वह सर्वोत्तम स्थान है। उसे देखते ही पहली पीक तैयार हो जाती है। जैसे अच्छा धनुष देखकर धनुर्धारियों के हाथ खुजलाने लगते थे, श्रोता देखकर कवियों को बेचैनी होने लगती है, ऐसे ही साफ दीवाल देखकर बनारसियों के मुँह बेचैन होने लगते हैं। सच है, कला के प्रदर्शन के लिए कलाकार बेचैन हो उठता है—अगर उचित स्थान हो !

पान थूकना एक कला है। बनारसियों में बहुत कुछ संस्कार तथा अभ्यास से यह कला उन्नत और पूर्ण हो जाती है। छटांक आध छटांक पान-रस, सिफाई से, पतली, मोटी धार में, पिच से दीवाल या गली में फेंक दिया जाता है, यह थूकते वक्त तथा थूकने से बनी पीकों को देखना अध्ययन की वस्तु है। यह कला नये लोग सीखें तो वर्षों के अभ्यास की जरूरत है।

तो अपने राम लिख चुके हैं कि विनोबाजी ने 'स्वच्छ काशी आन्दोलन' छेड़ा, अच्छा किया, लेकिन गन्दगी फैलाना बनारसियों का जन्म सिद्ध अधिकार है। वहाँ गंदगी कई तरह की हैं, जिन में पहली है—पानकी पीक। साथ ही पान घुलाना और थूकना कला की कोटि तक पहुँचा दिये गये हैं।

तो जब बनारसी आदमी पान जामाये हुए हो या पान को घुला कर, रस मुँह में जमाकर चुका हो तो उससे बोलना और उसे बोलने को बाध्य करना, खतरनाक है। वह बोलेगा तो श्रोता पर पान के छींटे जरूर पड़ेंगे और अगर उसे ज्यादा बोलना पड़ा तो वह थूकेगा—तब बोलेगा। यानी उसे बोलने को बाध्य करना, गंदगी फैलाने में शरीकत करना है और उसके मुँह के छींटों से खुद गंदा होना है।

यह न समझिये कि बनारसी किसी चबूतरे पर बैठ कर या सीढ़ी पर चढ़ कर ही थूकता है। वह तीसरी मंजिल से बिना नीचे झाँके थूक सकता है, सिनेमा देखते हुए अपने पैर मोड़ कर नीचे या बगल की दीवाल पर पिचकारी मार सकता है, नाव में बैठकर गंगाजी को पवित्र कर सकता है, मंदिरों की दीवाल पर चित्रकारी कर सकता है, और देख भाल कर भी वह आदमी पर थूक सकता है। यह आखिरी बात आपको विचित्र और विश्वास न करने लायक लगी होगी, अतएव कुछ घटनाएँ देनी होंगी।

इस समय मद्रास के महामहिम राज्यपाल श्रीमान् श्रीप्रकाशजी हैं। वे काशी के ही हैं। इनका घराना वहाँ "झक्कड़ घराना' कहा जाता है। कहा जाता है कि इस घराने के एक रईस दुमंजिले पर खिड़की में

पान घुलाकर बैठे रहते थे—यानी 'पीक' तैयार किये हुए। इनकी खिड़की के नीचे से जैसे ही कोई 'बुर्राक' (खूब सफेद) कपड़े पहने निकलता था, ऊपर से उस पर पीक पिचकारी चला देते थे। इस पिचकारी से पथिक जितना ही अधिक बिगड़ता, गालियाँ देता, रईस उतने ही प्रसन्न होते और कहते कि 'दबंग' आदमी है और यदि पिचकारी का शिकार मामूली तरह बिगड़ कर या यों ही चला जाता तो कहते कि 'बोदा' है, रूआब खा गया (यानी रईस के प्रताप से दब गया)।

काशी के गोस्वामी किशोरीलालजी साहित्य-क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं। ये महात्मा भी यह काम किया करते थे और असंख्य गालियां खाने के बाद नम्रता पूर्वक माफी माँगते थे और उस व्यक्ति को स्नान कराकर, नये कपड़े पहना कर, पान खिलाकर बिदा करते थे।

बनारस में गलियाँ संकीर्ण हैं। दोनों ओर गगनचुम्बी मकान हैं, जिनके कारण बहुत गलियों में सूर्य की किरणों का प्रवेश भी नहीं होता। ऐसी गलियों में भी दोपहर को बहुत से लोग छाता लगाकर चलते हैं। क्यों? ऊपर से आकर शराबोर कर देनेवाली पीक के डर से। खासकर दोपहर को यह डर बहुत ज्यादा रहता है, क्योंकि बनारसी लोगों में नौकरी पेशा बहुत कम हैं। दोपर को खाना खाते ही पान जमाना और पहली पीक नीचे बरसाना उनका दैनिक कर्म है। अतः अग्रसोची लोग छाते का व्यवहार करते हैं या ऊपर की ओर देखते हुए आगे कदम बढ़ाते हैं।

पान की पीक के मारे लोग अपने मकानों की बाहरी दीवालें काफी ऊँचे तक लाल रंग से रंगवा देते हैं—पान की पीक उसमें ही खप जाय, इसलिए। कुछ अलकतरे का प्रयोग करते हैं। धार्मिक लोग काशी

की दीवालों से सट कर नहीं खड़े होते, न उन्हें छूते हैं। कारण, उनका काफी हिस्सा पीक से रंगा होता है और जहाँ रंग न हो, वहाँ भी हलके छींटे तो पड़े ही होंगे। ानी दीवाल जूठी होती हैं। उन्हें छूकर हाथ धोना पड़ता है, सट कर सचैल स्नान (पहने हुए कपड़ों के सहित स्नान) करना पड़ता है।

बनारसी गन्दगी में पान के बाद पेशाब का नम्बर आता है। लखनऊ में 'मैं अभी आया' कह—कर कोई चला जाय तो लोग समझ लेते हैं कि वह क्या करने जा रहा है।

तो, बनारस में कुछ विशिष्ट समय है जब कि लोग ज्यादा 'हलके' होते हैं। वे समय हैं—प्रात' ५ से ८ और सायंकाल ६ से १०। इन दोनों समय लोग भांग छानते हैं या 'बहरी ओर' के कुओं का गले तक पानी पीते हैं, और इसका फल अधिक हलका होना स्वतः सिद्ध है।

बनारस के लोग सुबह से दोपहर तक और तीसरे पहर से रात ११-१२ बजे तक प्रायः घर के बाहर रहते हैं, अतः हलका होने की क्रिया भी, जहाँ वे रहते हैं, वहीं होती है। पान की दूकान पर हैं तो उसके पास, कहीं सड़क पर हैं तो उसकी नालियों में। गलियों और सड़कों पर शायद ही कहीं मूत्रालय हों, अतः लोगों को यह काम करना ही पड़ता है। करते-करते उनका संकोच इतना दूर हो गया है कि वे भरी गली और भरी सड़क पर भी बैठ जाते हैं, जिसे संकोच हो, रुक जाय या आँखें मूंद कर निकल जाय।

सड़क के किनारे की गलियों के प्रारम्भ तो भयंकर होते हैं। कर्मनाशा बहती रहती हैं। जेठ-वैसाख में उसकी लहरें अगर सूख गयीं

तो दूनी विपत्ति। दस-पाँच घड़ा पानी डालने से चौगुनी विपत्ति, क्योंकि जमी कर्मनाशा लहरें लेने लगती है! ज्ञानवापी बनारस की प्रसिद्ध जगह है, जहाँ से सीढ़ियां उतर कर विश्वनाथजी का मन्दिर एकदम पास है। सीढ़ियों के नीचे की कर्मनाशा प्रसिद्ध है। वहाँ गली की ढाल है जो एक पूरी गली घूमकर, दशाश्वमेध की सड़क पर समाप्त होती है। इस कर्मनाशा को अगर धोया जाय तो कम से कम २० हजार घड़े पानी चाहियें, क्योंकि दशाश्वमेध वाली सड़क तक धोना पड़ेगा। इतना परिश्रम नगर पालिका ही कर सकती है और वह तब करती है, जब गवर्नर या उनसे अधिक सभ्रांत व्यक्ति विश्वनाथ दर्शन करने जायं। यह तब होता था, जब गवर्नर अंगरेज होते थे। ज्ञानवापी की सड़क पर मोटर रोक कर इसी संक्षिप्त मार्ग से वे आते थे—और अधिक गन्दी गलियों से उन्हें ले जाने का साहस न होता था। अब देशी गवर्नर हैं। अब इस सफाई की बजाय शायद इन्हें अन्य गलियों से ले जाया जाय। अपने आदमियों से क्या शरम!

बनारस में गलियों तथा सड़कों पर आमतौर से पेशाबखाने नहीं हैं। कुछ वर्ष हुए, नगरपालिका को यह बात सूझी कि पेशाबखाना बनवाया जाय। उसने कंपनी बाग के दरवाजे पर तहखाने वाला पेशाबखाना बनवाया। उसमें उतरने की सीढ़ी जमीन की सतह से मिली हुई थी। काफी सीढ़ियाँ उतर कर तब हलके होने के लिए फ्लश बने थे। एक दिन अपने राम ने क्या देखा कि ऊपरी सीढ़ी पर बैठे हुए एक साहब हलके हो रहे हैं। उनके फारिग हो चुकने पर नीचे से एक साहब गालियाँ देते हुए निकले जो ऊपर वाले साहब की कृपा से तराबोर

थे। दोनों में अच्छी - खासी भिड़न्त हुई। यह क्रिया इस तरह चली कि नगरपालिका ने अन्त में वह तहखाना बन्द करा दिया। इसमें गलती नगरपालिका की थी। उसे पहले उपर पेशाब खाना बनवाना चाहिये था। जनता जब अभ्यस्त हो जाती, तब तहखाना बनता तो लोग शायद नीचे उतरने का कष्ट करते।

एक बार बनारस के टाउनहाल में प्रदर्शनी हो रही थी। एक ओर बड़ा सा चबूतरा बनाया गया था, जिस पर आतिशबाजी होती थी। चबूतरे से कुछ हटकर कुर्सियाँ थीं, जिन पर हजारों आदमी बैठे थे—आतिशबाजी के इन्तजार में। सहसा एक व्यक्ति उठे आगे की कुर्सियों से और चबूतरे के पास जाकर हलके होने लगे। आतिशबाजी के पहले हजारों आदमियों ने यह दृश्य देखा—कोई हँसा, कोई मुस्कुराया, पर, बुरा शायद किसी को न लगा।

सड़क पर, पुलिस की मौजूदगी में भी यह दृश्य देखे जा सकते हैं। पुलिस क्या करे! शायद करने की बात भी उसे नहीं सूझती। यह तो रोजमर्रा की बात है नजरों को सह गयी है। बनारस में, अनेक अपराधों में अनेक व्यक्ति पकड़े जाते हैं—पर इस अपराध में कोई नहीं पकड़ा जाता।

सुबह, अंधेरा खत्म होने के आस-पास अगर आप सड़कों पर निकलें तो हलके होने का बड़ा रूप या दृश्य आप देख सकते हैं। बहुत से महल्लों में मकानों में पैखाने नहीं हैं, न आस-पास 'बंपुलिस' है। कुछ गलियों में भी सुबह के वक्त अंधेरे में चलना भयंकर है—खास कर नंगे पैर।

काशी और गंदगी—दोनों का सम्बन्ध सनातन और स्वाभाविक है। यूनान की एक पौराणिक कथा है कि हरक्यूलिस ने राजा एजियस का अस्तबल साफ करने के लिए जहाँ बरसों से लीद साफ नहीं हुई थी, एक नदी की धारा को मोड़कर अस्तबल से प्रवाहित किया था। बनारस में भी गंगामाई कुछ ऐसा ही करती नजर आती हैं। अभी समाचार आया है कि गंगाजी किनारे पर का ५०० फुट लम्बा पुश्ता ही बहा ले गयीं। मगर यह भी समझना भूल होगी कि विनोबाजी के पहले किसी ने काशी की गंदगी दूर करने की ओर ध्यान ही नहीं दिया। काशी वासियों की अपनी तरकीबे हैं, सड़क या गली में लघुशंका रोकने की। मसलन एक प्रसिद्ध घाटपर चढ़ते ही आपकी नजर दीवार पर के एक बड़े लेख पर पड़ेगी—बहुक्म फक्कड़ बादशाह 'यहाँ जो पेशाब करेगा उस पर ५०० जूते।' एक प्रसिद्ध गली में दीवार पर बड़े-बड़े अक्षरों में गालियाँ लिखी हैं कि जो यहाँ लघुशंका करे वह......ऐसा करे।

मगर इन सब तरकीबों से भी काम न चला तो दूसरी तरकीब निकाली गयी। ऐसे स्थानों को तजबीज कर जहाँ लोग आमतौर पर लघुशंका करते हैं, कोई शिवजी की पिंडिका या गणेश या महाबीरजी की मूर्ति स्थापित कर दी गयी।

बनारस की ही घटना है। म्युनिसपल बोर्ड के एक चेयरमैन थे, उन्हें सभापति बनने का बहुत शौक था। कोई भी आयोजन हो, न्योता मिलते ही सभापति बनने चले जाते थे। एक बार उनको एक मुहल्ले की सभा का सभापति बनने का निमंत्रण मिला। चेयरमैन साहब ठीक

समय पर पहुँचे। मुहल्ले वाले उन्हें सभा स्थल की ओर ले चले। उस जगह कूड़े का अंबार लगा था, एक लंबे चौड़े चबूतरे की तरह, मुहल्ले वाले इसी मंच पर सभापतिजी को स्थापित करने को तुले थे! बहुत मुश्किल से वे जान बचाकर भाग पाये!

——

राजद्वारे श्मशाने च !

विदेशोंसे कभी-कभी बढ़िया समाचार आ जाते हैं। सिलबनका समाचार है कि एक गावमें एक आदमी मरा। उसकी अर्थी ढोने के लिए लोगोंमें ठन गयी। बात यह कि मृत बहुत मोटा था। उसे आशंका थी कि मेरे मरने पर शायद कोई उठाने न आवे। अतः उसने व्यवस्था कर दी थी कि अर्थी ढोने वाले प्रत्येक व्यक्तिको पांच बोतल शराब एवं कुछ रुपये मिल जायं।

हमारे ऋषि-मुनि त्रिकालदर्शी थे। हर पहलू पर उन्होंने विचार किया और उसका उपाय सोच निकाला। उन्होंने लिखा कि शवको ढोना, उसके साथ श्मशान जाना, परम पुण्यका काम है। लेन-देनकी बात नहीं!

हमारे ऋषि-मुनियोंने एक और उपाय भी किया था। उन्होंने लिखा कि जब तक घरमें शव रहे, तब तक घरवाले और पड़ोसी जल तक नहीं पी सकते, ऐसा करना पाप है। इस पापसे बचनेके लिए, प्याससे व्याकुल पड़ोसियोंको मदद्के लिए व्यग्र होते अपने रामने देखा है।

एक और उपाय भी ऋषि-मुनियोंने किया। उन्होंने लिखा—'राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठिति स बांधवः।' राजाके दरवाजे और श्मशानमें जो

साथ दे, वह बान्धव होता है। अर्थात् श्मशान तक साथ जाने वालों को तेरही के दिन निमंत्रण देना कर्त्तव्य है।

प्रसंगवश अपने राम 'राजद्वारे' का सही अर्थ बतलाना चाहते हैं। 'राजाके द्वारे'का अर्थ 'राजाका दरबार' या 'राजाके सामने' नहीं है,जैसा कि अनेक पंडित कहते हैं। वहां जाने में विपत्ति नहीं, अतः सहायताकी भी जरूरत नहीं। 'राज द्वारे, का अर्थ है—अदालत। वहां जो साथ दे—झूठा गवाह बने, वकील के यहां दौड़े, मुहर्रिर-पेशकार को सावे, शत्रु-पक्ष के गवाहको तोड़े-वह बांधव। उसे भी खिलाना पिलाना कर्त्तव्य है।

एक कहानी है-उसे भी सुना ही दें। एक आदमी जन्म भर अपने सब पड़ोसियोंसे झगड़ड़ा रहा और उनका अपमान करता रहा। वह मर गया तो कोई उठाने न आया। तब उसके पुत्रने उसे चौराहे पर लाकर लिटा दिया और उसका एक हाथ माथे पर रखा और एकमे जूता पकड़ा दिया। लोग पुत्रसे कारण पूछने लगे तो उसने कहा कि पिताजी यह कर मरे थे कि जो हमें श्मशान ले जाय, वह सिर-माथे, और जो न ले जाय-उसे हम इन जूतों जैसा समझते हैं। सुना है-सभी लोग उसे श्मशान ले गये थे।

भारतमें हर शहरमें ऐसे अनेक परोपकारी हैं, जो इस तरहके लोगों के मारने की राह देखा करते हैं,जिन्हें उठानेवाला कोई न हो। वे तुरंत चंदा करना शुरू कर देते हैं। सिलबनमें इस कलाके ज्ञाता नहीं हैं क्या?

आज कल बड़े शहरोंमें, खास कर बम्बई और कलकत्ते में भी एक-एक मकानमें सैकड़ों किरायेदार रहते हैं और वे एक दूसरे को नहीं जानते। न जानना वे अपनी शान भी समझते हैं। वहां अलबत्ता

सिलबनवाली व्यवस्था अवश्यक हो गयी है। बड़े शहरोंमें रहने वाले लोग पाप और पुण्य, दोनों भूल चुके हैं।

हमारे ऋसि-मुनियोंने'बांधव' परम्परा चलाये रखनेका भी एक उपाय किया था। उन्होने पाप-पुण्यकी यादगार बनाये रखनेका एक उपाय किया था। उनका एक विधान था कि जो दाह-कर्म करे, वह दस दिन रोज गरुड़पुराण सुने और बांधवोंके साथ सुने। गरुड़पुराणमें विस्तारसे बताया गया है कि मरने पर आत्माकी क्या गति होती है, पाप और पुण्यके अनुसार। श्रोताओं पर उनका प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। पुराणोंकी कहानियां जल्दी ध्यानसे नहीं उतरती !

— —

तीन जन्म का सम्बन्ध

बीकानेरमें पचास हजार कुत्ते-कुतियां हैं। उनकी बढ़ती संख्या रोकने के लिए एक योजना बनाई गयी है। वह यह कि कुत्ते-कुतियां के लिए अलग-अलग बाड़े बनाये जायेंगे और इनमें उन्हें रखा जायगा। इस योजना पर बारह लाख रुपया खर्च होगा।

—अपनेराम की सलाह यह है कि कसौली (जहाँ कुत्ता काटने पर परीक्षण और चिकित्सा होती है) में जांच हो जाय कि उन्हें किसी कुत्ते ने तो नहीं काटा है!

समाचार है कि उक्त कुत्ते-कुतियों को मारने से धार्मिक सज्जनों को बहुत तकलीफ होगी। इसलिए उन्हें अलगर रखकर, संख्या न बढ़ाने दी जायगी।

—अपनेरामका सुझाव है कि कुत्ते-कुत्ती धार्मिकों को सौंप दी जायं। वे उन्हे अच्छी तरह रखें और उनकी संख्या में वृद्धि न होने दें।

—अपनेराम की समझ में न आया कि जो धार्मिक उनका मरना नहीं सह सकते, वे उनकी विरह वेदना कैसे सहेंगे! मरना तो एक बार ही होता है विरह तो हर सेकेंड की मौत है।

उक्त कुत्तों को बधिया कर देने की योजना भी बनाई गयी थी, पर धार्मिक सज्जनों के कारण वह चल नहीं सकती।

—अपनेराम तो नास्तिक हैं। पर, उन धार्मिकों ने जरूर ही सोचा होगा कि पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण उन कुत्तों से उनका कोई संबंध जरूर होगा। और, इस जन्म का संस्कार अगले जन्म में है। अतः अगले जन्म में भी इन कुत्तों का उनसे कोई सम्बन्ध जरूर होगा।

नारदजी एक बार श्रीकृष्ण के यहां आये। श्री कृष्ण ने कहा कि आपका दर्शन इस जन्म के पापों को हरता है, अतः अगला जन्म भी शुभ-युक्त होगा ही, और अभी दर्शन हुआ, अतः पूर्व जन्म में जरूर हमने शुभ कर्म किये थे, इस प्रकार आपके दर्शन से तीनों जन्म के शुभ का पता चलता है। यह माघकवि ने लिखा है। कुत्तों के जबान होती तो वे धार्मिक सज्जनोंके लिए यही बात दुहरा देते।

वृद्धस्य तरुणी भार्या !

उत्तर प्रदेशीय विधान-परिषद् में असमान विवाह पर चर्चा हुई। विधेयक यह था कि जिन स्त्री-पुरुषों का विवाह हो, उनकी उम्र में २५ साल से ज्यादा का अन्तर न हो। अन्त में इस विधेयक को जनमत जानने के लिए प्रचारित करने का निश्चय हुआ।

—इस विधेयक का उद्देश्य यह है कि किसी युवती का विवाह किसी वृद्ध से न हो। पर, यह भी हो सकता है कि किसी कारणवश, कोई युवती स्वयं किसी वृद्ध से विवाह करना चाहे। अतः जरूरी यह है कि 'युवती' कोई कब तक मानी जाय, यह तय हो जाय, और पुरुष के विवाह कर सकने की आखिरी उम्र भी तय हो जाय।

विधेयक पर विचार प्रकट करते हुए एक सदस्य ने कहा कि इससे वृद्ध-समाज में क्षोभ उत्पन्न होगा।

—बात ही क्षोभ की है। अभी, किसी को वृद्ध करार देने का काम युवतियों पर ही छोड़ दीजिये। पुरुष क्यों नाहक धंसे पड़ते हैं!

एक सदस्य ने कहा कि वृद्ध-विवाह से समाज में दुराचार फैलता है। वृद्ध की स्त्री चंचल होती है।

—लेकिन यह क्यों भूल जाते हैं कि वृद्ध को तरुणी पत्नी प्राणों से भी अधिक प्रिय होती है—'बृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योपि गरीयसी।'

एक सदस्य ने कहा कि 'नेताओं को इस विधेयक के बंधन से मुक्त रखा जाय, नवयुवती वृद्धों के लिए महौषध होती है।'

—सदस्य लोग यह बात सरकार के दिमाग में अच्छी तरह धंसा दें—कुछ लाभ ही की सम्भावना है। आखिर कहते-सुनते बहुत से काम हो ही गये।

न्यायमन्त्री ने कहा कि इस विधेयक को कानून बनाने में जल्दबाजी न करनी चाहिये। लोगों को यह भ्रम है विवाह केवल कामवासना के कारण किये जाते हैं; विवाह 'सहचर' पाने के लिए भी होते हैं।

—कोई भी बात, उदाहरणों से पुष्ट हो जाती है। न्यायमंत्री जी को दो चार उदाहरण देना चाहिये था।

न्यायमन्त्री ने कहा कि उक्त विधेयक केवल सूबे का कानून बने तो व्यर्थ होगा, जैसे, राज्य के कुछ ही जिलों में नशाबंदी कानून बनाने से वह व्यर्थ हुआ है। कानपुर के लोग लखनऊ आकर शराब पीते हैं और चले जाते हैं।

—मतलब यह कि इस सूबे के लोग अन्य सूबों में जाकर विवाह कर लेंगे। अजी, जिन्हें करना ही होगा—वे शहर छोड़ेगें, सूबा छोड़ेगें, वतन छोड़ेगें, घर-बार छोड़ेगें, मां-बाप छोड़ेंगे। वे करेंगे ही, कानून के खिलाफ ही सही!

——

एम० एल० ए० और अफसर

उत्तर प्रदेशीय विधान सभा में सरकार की ओर से एक विधेयक प्रस्तुत किया गया। उसके अनुसार मंत्रियों, उपमन्त्रियों, अफसरों, सभा-सचिवों और विधायकों का भत्ता और सुविधाएँ बढ़ेंगी। सरकार की ओर से कहा गया कि रुपये का मूल्य गिर गया है, अतः वृद्धि की जरूरत है।

—जिन लोगों के लिए यह विधेयक बना है, उनके अतिरिक्त जितने सरकारी नौकर हों, उन्हें प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिये। औरों की उन्नति से प्रसन्न होना ही सज्जनों का कर्तव्य है।

—एक बिगड़े दिल का प्रश्न है कि रुपये का मूल्य मन्त्रियों आदि के लिए ही गिरा है या सरकारी क्लर्कों आदि के लिए भी? मौलाना का कहना है कि शरीर में सिर प्रधान होता है, सरकार में मन्त्री आदि प्रधान होते हैं। पहले उनकी ही जरूरतें पूरी होनी चाहियें।

सरकार की ओर से कहा गया कि विधायकों को जनहित के लिए बहुत घूमना पड़ता है। एम० एल० ए० लोग जनहित में इतने निमग्न रहते हैं कि अपने परिवार के पोषण के लिए कमाने का उन्हें समय ही नहीं मिलता।

—अब हमें एक दूरबीन खरीदनी पड़ेगी। सिर्फ आँखों से तो हमें यह बात दिखायी नहीं पड़ती! कोई सरकारी दूरबीन हाथ लग गयी तो पैसे बचेंगे।

—आपने मौलाना का कहना है कि जनहित में निमग्न एम० एल० ए० लोगोंका भत्ता वगैरह सरकार उनके घर भिजवा दिया करे। उन्हें लेने की सुध कब रहती होगी!

उक्त विधेयक के अनुसार, विधायक यदि अधिवेशन-काल में दस दिन से कम गैरहाजिर रहें तो उन्हें भत्ता मिलता रहेगा।

--दस दिन की बात का हम घोर विरोध करते हैं। क्या एम० एल० ए० लोग जनहित में कहीं निमग्न हों तो उसे छोड़ कर चले आवें? गैर हाजिरी के दिन गिना करें? दुचिती में जनहित नहीं हो सकता। बस, भत्ता मिलता रहना चाहिये, विधायक आवें या न आवें।

*

हमारे प्रान्त के राज्यपाल ने त्रिवेन्द्रम् में वहाँ के सेक्रेटरियट असोसियेशन के उत्सव का उद्‌घाटन करते हुए कहा कि—अफसरों को अपने को 'महामानव' न समझना चाहिये।

—रामचन्द्र जी ने कहा था–'भरतहिं होइ न राजमद, विधिहरि-हरिपद पाइ।' विधि कमल पर बैठते हैं जो वियोगियों तक को ठंडक पहुँचाता है। विष्णु जल में ही रहते हैं। हर भी बरफ के पहाड़ पर रहते हैं। यह सब उपाय 'राजमद' न होने देने के लिए हैं। सरकारी अफसर सूखी लकड़ी की कुर्सी पर बैठते हैं जो गरम हो जाती है। कुछ ऐसा इन्तजाम होना चाहिये कि अफसर सदा ठंढे रहें। तभी राज्यपाल का उपदेश कारगर होगा।

राज्यपाल ने कहा -- अफसर राजनीतिक दृष्टि से निष्पक्ष रहें। अफसर राजनीतिज्ञ नहीं, उसे इससे मतलब नहीं कि कोई काम क्यों किया जाता है। उसे इससे मतलब नहीं कि क्या करना है और कैसे करना है। जब वह 'क्यों' की सीमा पार करता है तो दिक्कतें पैदा होती हैं।

—जिनको नेता बनना हो, वे हर बात में 'क्यों' का ध्यान रखें। जिन नेताओं को महा-नेता बनना हो वे हर बात में 'क्यों' का संपुट लगाया करें। सरकारी अफसर 'क्यों' का अर्थात किसी बात की तह तक जाने वाले विचार का त्याग कर दें। बस, उनकी अफसरी सुरक्षित !

——

जूआ और जीवन

आज दीपावली है। यह प्रारम्भ में ऋतु से सम्बद्ध उत्सव था। ऋतु-परिवर्तन का उत्सव था। तीसरी शताब्दी के वात्स्यायन ने अपने 'काम-सूत्र' में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। चौथी शताब्दी के पद्मपुराण में इसका नाम से उल्लेख है और मनाने की विधि भी है। इसका अर्थ यह कि सौ वर्षों में इसे 'शिष्ट' जनों ने अपना लिया और इसका रूप कुछ धार्मिक भी कर दिया। पद्मपुराणमें पूजन का विधान है, दीप जलाने का विधान है और तूर्य (भेरी) आदि बाजे) बजाकर, रात को घर से 'दलिद्दर' भगाने का विधान है। द्यूत खेलने का विधान भी है।

और तीन सौ वर्षों में कुछ धार्मिक विधियाँ और बढ़ीं और कुछ परिवर्तन भी हुए। तूर्य का स्थान 'शूर्प' (सूप) ने ले लिया। आज भी शहरों और गाँवों में कुछ लोग सूप पीट कर 'दलिद्दर' भगाते हैं। धीरे-धीरे लक्ष्मी से सम्बन्ध होने के कारण, यह उत्सव व्यापारियों का हो गया। 'दलिद्दर' भगा कर लक्ष्मी को बुलाने का सगुन करने के लिए 'धनतेरस' चली और सगुन के रूप में नया बरतन खरीदने की प्रथा चली।

ऋग्वेद में अक्ष (पासा) के नाम से एक अध्याय है। उसका पहला मन्त्र है—''अक्षैर्मा दीव्यः।' पासों से मत खेलो। खेलने वालों की दुर्गति का वर्णन भी है! वैदिक युग में 'समन' नामक सार्वजनिक उत्सव होते थे। उनमें वेश्याएं आती थीं, नट आते थे, बंदी-गण आते थे, घुड़ दौड़ और रथों की दौड़ होती थी। मद्य-पान और जुए की धूम रहती थी। संभवतः रथ और घोड़ों की दौड़ से जुए का गहरा सम्बन्ध था।

जुए का सम्बन्ध शिव से भी जोड़ा गया है। पार्वती के साथ उनके जुआ खेलने का और दांव पर सिर के चन्द्रमा को रख देने का वर्णन मिलता है। 'देव' शब्द का एक अर्थ है–दीप्तिवाला। दूसरा है–जुआ खेलने वाला। 'देवन' (जुआ) और 'देव' एक ही जगह से, एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं।

महाभारत काल में भी जुए का जोर था। धर्मराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा थी कि कोई जुआ खेलने बुलाये तो अवश्य खेलते थे। धर्मराज संभवतः ऊंची कोटि के खेलने वाले थे। द्रौपदी को भी दांव पर रखते उन्हें हिचक न हुई।

पाणिनि के काल में भी जुआ था। उनका एक सूत्र है 'अक्षशलाका संख्याः परिणा।' यह सूत्र जुए के सम्बन्ध का है। इससे चार शब्द बनते हैं—एक परि, द्विपरि, त्रिपरि और चतुष्परि। उस समय पांच पासों से जुआ खेला जाता था। पांचों पासे 'चित' हों या पांचों 'पट' हों, तभी उन्हें फेकने वाला जीतता था। यदि पांच में से एक 'चित' होता (शेष 'पट') तो उसे फेकने का नाम था - एक परि। ऐसे ही द्विपरि, त्रिपरि और चतुष्परि। 'पंचपरि' शब्द तो बन नहीं सकता, क्योंकि तब तो फेकने वाला जीतता ही था।

हम अपने पाठकों का इस शुभ अवसर पर अभिनन्दन करते हैं और कामना करते हैं कि उनका वर्ष आनन्द से बीते। अगर कोई पाठक जुआ खेले तो इतना न हारे कि घर से निकाल दिया जाय। अब वे आज्ञाकारी भाई और पत्नी कहां!

——

चोखे-चौपदे

काँव-काँवके ही अन्तर्गत कभी कभी 'कविता' [चोखे-चौपदे] भी रहती थी। इनका उपयोग विभिन्न पत्रोंमें जिस रूपमें किया जाता था, उसी रूपमें यहाँ संकलित किया गया है। इस तरहके पाँच-छः छींटे एकत्र करके मनोरंजक लेख के रूपमें यह दूसरे पत्रोंमें उधृत होते रहे हैं। दूसरे पत्रोंमें उधृत वही रूप यहाँ प्रस्तुत है। इनमें प्रयुक्त कविताके लिए ही—श्रीवृन्दावनलाल वर्माने शायद लिखा है कि 'सड़ी-गली कविताओंको हमारे यहाँ साहित्यकी अभिधा दी जाती है। मैं तो 'काँव-काँव'की चोटोंको अमर साहित्यकी श्रेणीमें निःसंकोच रख सकता हूँ। संस्कृतके इतने गहरे विद्वान् और उसपर ऐसी बढ़िया, पैनी, मंजी हुई हिन्दी! ऐसी कितने लिखते हैं?

❀ ❀ ❀ ❀

२६ जनवरी, यानी गणतन्त्र-दिवस बीत गया। हमने अपना तन-मन-धन तीनों उसमें लगा दिया। देखना है, नेता लोग अपना फर्ज किस हदतक अदा करते हैं—

आज भाषण का करेंगे काम नेता, सुबह को अब ये करेंगे शाम नेता!
पार्टियों की आँख पर दूने चढ़ेंगे, मुफ्त में अपना करेंगे नाम नेता!

० ० ०

सरकार के मन्त्री, उपमन्त्री, सभा-सचिव और अफसरों ने भी पूर्व-योजनानुसार कहीं न कहीं झण्डा फहराया। भाषण किया और प्रगति का जयगान किया—

अज फहरेगी पताका देश भर में, व्यस्त होंगे लोग भाषण में, डिनर में!
करेंगे अंदाज कितने वोट अपने, मिलेगा कोई न अपने आज घर में!

० ० ०

पिछले चुनाव के बीच गांधी जयन्ती पड़ गयी थी। उस दिन, जयन्ती का नेतृत्व करने के लिए लखनऊ में एक भी नेता न था—सब वोट-संग्रह के दौरे पर थे। हर्ष की बात है कि इस बार गणतन्त्र दिवस, चुनाव के बीच नहीं पड़ा—

देवता की स्थापना कर जय मनाना, भक्त-गण की आय से मन्दिर बनाना !
रख पुजारी, स्वयं संत महंत होकर, उचित ही है नित्य लेट 'प्रसाद' पाना !

× × ×

एक साहब पूछते हैं कि गणतन्त्र दिवस को हम क्या करें। हमारा ख्याल है कि आप प्रेमपूर्वक पंचरत्नी छानिये, खैनी खाइये, सिनेमा देखिये और जब नींद आवे, सो जाइये। जितने महत्व के काम हैं, उनमें आपको कौन पूछेगा ? उनके लिए नेताओं पर भरोसा रखिये—
किसी भाषण में कहीं जम जाइये, पीटने में तालियाँ रम जाइये !
देश की सुन प्रगति के सब आँकड़े, पेट-दिल के भूल सब गम जाइये !

० ० ०

एक सज्जन पूछते हैं कि 'लोगों का ख्याल था कि गाँधीजी के न रहने पर काँग्रेस नहीं चल सकती। अब वे नहीं हैं, पर काँग्रेस चल रही है। आपका क्या ख्याल है।' राम और कृष्ण नहीं रहे, पर दुनिया चल रही है—चलती ही रहेगी। इसीलिए इसे 'संसार' कहते हैं— सरकने वाली। काँग्रेस के वर्तमान रूप पर हमारी राय यह है—
बिना जड़ की बेल रोपी रह गयी, हैं न कान्हा, दीन गोपी रह गयी !
छोड़ आसन त्याग भागा, 'पद' जमा, आज काँग्रेस सिर्फ टोपी रह गयी !

० ० ०

अफसरों की दूसरी शादी (एक पत्नी रहते) में सरकार दखल दे रही है तो पहली ही से शुरूआत करे। अफसरों की बीबी कैसी होनी चाहिये, यह भी वही तय किया करे। इससे सरकार भी निश्चित रहा करेगी, अफ़सर भी।

अफसरों का नाप ले, फिर तोल ले, बीबियाँ चुन स्थूल, कृश या गोल ले !
अफसरों के सिर मढ़े, सरकार अब, शादियों का एक खाता खोल ले !

× × ×

एक साहब लिखते हैं कि लखनऊ में महिलाओं का एक कालेज है। उसकी वार्षिक पत्रिका अभी-अभी छपी है। उसमें छात्राओं के लेख और कविताएँ देखकर यह निश्चय होता है कि सभी विरह-मग्न हैं। आपने कुछ सुना ?

—हमने भी पत्रिका देखी है। हमारा मत यह है कि लेखिकाओं ने समय के साथ चलने की कोशिश की है। उन्होंने देखा कि हिन्दी में चारों ओर यही सब छप रहा है तो कोई अच्छी चीज होगी, हम भी नकल करें—

इनके सब टूटे नहीं अभी दूध के दाँत !
विरह पचेगा ? अन्न से जिनकी उछले आँत !

× × ×

लखनऊ रेडियो पचास किलोवाट का हो गया।

—पहले यह शायद पाँच किलोवाट का था। यानी, इसकी शक्ति और प्रतिष्ठा दस गुनी हो गयी। इसी अनुपात में लेखक और उनकी दक्षिणा भी बढ़ेगी या नहीं ?

—संस्कृत के प्रोग्राम अभी जरा कम होते हैं। वे अब रोज हुआ करें तो अच्छा है। इससे यह होगा कि संस्कृतज्ञों की भी पूछ झख मार कर हो जायगी। जो कुछ हो रहा है, वह ठीक ही है। 'गुणाढ्य' पर एक वार्ता हमारे पंडितजी भी प्रसारित कर सकते हैं। क्या समझे ?

रेडिओ की 'संस्कृत' का खोल फाटक घुस पड़ो, लिखने लगो धड़ा-धड़ नाटक !
नाम होगा 'संसकिर्त'—विवेकियों में, और घाते में मिले हर मास हाटक !

× × ×

चित्तौगढ़ में रेलवे की एक गुमटी के चौकीदार ने, रेल आने का समय होने पर क्रासिंग का फाटक बन्द कर दिया। उसी समय श्री जवाहरलाल नेहरू की मोटर पहुँच कर रुक गयी। साथ के पुलिस अधिकारियों ने चौकीदार से फाटक खोल देने को कहा, पर चौकीदार ने न खोला। नेहरूजी ने कर्त्तव्य परायणता के लिए उसकी पीठ ठोकी।

—हमारे प्रदेश के एक भूतपूर्व मन्त्रीजी ने ऐसे मौके पर एक सिपाही को पीट दिया था। आखिर नेहरूजी ठहरे !

—सच तो यह है कि कोरा पीठ ठोक देना हमें पसन्द न आया। संस्कृत के एक कवि ने कहा है—

यदि वही घर रहे जालों से भरा, वही चूल्हा, वही चक्की, मन मरा।
वहीं घुटने मोड़ कर सोना पड़े, क्या बड़े की दृष्टि से कहिये सरा ?

+ + +

एक सज्जन पूछते हैं कि इस नये वर्ष के राजा शुक्र, मन्त्री बुध, धनेश शुक्र और रसेश चंद्र हैं। इन सबका मिल कर क्या फल होगा ? मैं लेखक हूँ।

—चलिये आप तो बहुत साफ बचे ! कवियों पर थोड़ा संकट रहेगा। धनेश शुक्र होने से कवि-सम्मेलनों में अकसर पैसा न मिलेगा। रसेश चंद्र हैं, इसलिए तरल जलपान और मीठी बातें पल्ले पड़ेंगी। दूसरों की

कविता से कवि बनने वाले सावधान रहें—शनि अच्छे नहीं। काली चीजों से दूर रहा करें।

नकली कवि बैसाख में पायेंगे कुछ हर्ष!
अन्य मास सब त्रास-मय ऐसा यह नव-वर्ष!!

\+ + +

लखनऊ के दो कालेजों के तीन छात्रों ने एक छात्रा का रिक्शा रोका। वे उस पर चढ़ गये और लड़की को छेड़ने लगे। रिक्शा उलट गया। लड़की के चिल्लाने पर लोग जुटे, पुलिस आयी और दो छात्र पकड़े गये। तीसरा साइकिल छोड़ कर भाग गया।

—हमें विश्वास है कि अब ये छात्र, छात्राओं के घरों पर सामूहिक धावा कर अपनी संस्थाओं का नाम उजागर करेंगे और बाकी ही क्या है।

—अभिभावक लोग जरा और देखें। यही रवैया छात्रों का रहे तो—
हो शुरू प्राचीन गहने फिर गढ़ाना, नियम हो–घर से न बाहर पग बढ़ाना।
यही शिक्षा का असर यदि छात्रगण पर, लोग कर दें बन्द कन्या को पढ़ाना॥

× × ×

बाराबंकी में नापितों ने मेहतरों की हजामत बनाने से इनकार किया। इस पर मेहतरों ने उनके घर 'कमाना' छोड़ दिया। विरोध में नापितों ने हड़ताल कर दी। फल यह कि जनता परेशान है।

—नापित बहुत महत्वपूर्ण होता है। बाल काटना एक मुख्य कला है। इसी के कारण 'चोटी' चली। पहले नापित, तब चोटी। उसने चोटी रखकर शेष सिर मूंड दिया। उसी ने नाना प्रकार के बाल काटना

शुरू किया—नाना केश फैशनों का वह प्रवर्त्तक है। नापित होना, केश-कर्त्तन कला का माहिर होना बुरी बात नहीं—

केश-कर्तन है बहुत ऊंची कला, कीर्ति दे धन दे, करे जन-जन का भला !
व्यर्थ के साहित्यकारो ! ध्यान दो, आजमाओ इसे समझो मत बला !!

\+ + +

सम्पूर्णानन्दजी ने कहा है कि अब लोग दूसरे ग्रहों में भी अपराध किया करेंगे। हमें बहुत घबराहट हो रही है। मानसिक अपराध तो लोग बहुत दूर से कर सकते हैं। अगर सशरीर दूसरे ग्रहों में पहुँच गये तो बहुत उत्पात करेंगे—

लोग धरती के बहुत पापी, पुराने लग गये विज्ञान से पातक दुराने।
लोक में यदि चन्द्र के पहुँचे कभी ये, चन्द्रमुखियों के लगेंगे मन चुराने ॥

× + ×

एक 'छात्र' पूछते हैं कि 'परीक्षा शुरू होनेवाली है। पास हो जाने का अचूक नुस्खा बताइये।' हमारी राय यह है कि पहले भले आदमियों-वाला काम कीजिये, यानी परीक्षक के यहां सिफारिश करना। उसके साथ ही, दो-चार साथियों के साथ, डंडे लेकर, परीक्षक के मकान के सामने दस-पांच दफा आओ-जाओ। किला फतेह:-

सच, सिफारिश सफलता की जान है, भय बिना पर प्रीति का कब मान है !
इसलिए 'एक्जामिनर' को त्रास दो, पास हो जाना बहुत आसान है !!

× × ×

एक साहब लिखते हैं कि कुछ दिन पहले एक इण्टर कालेज में एक मन्त्रीजी पधारे। स्वागत-गान में कहा गया कि लखनऊ में मिष्टान्न आदि जो

चीजें मिलती हैं, वे इह देहात में कहां ! हमारी सेवा में त्रुटियां तो रहेंगी ही। इस स्तुति को मन्त्रीजी ने व्यंग समझा और भाषण में कहा कि मन्त्रियों की जिंदगी तो ऐसी परेशानी की है कि नेहरूजी बार-बार इस्तीफा देना चाहते हैं। आपको हम पर तरस आना चाहिये।

हमें तो उसी दिन से तरस आ रहा है, जिस दिन आप मन्त्री हुए थे। नेहरूजी के इस्तीफे की बात हमने सुनी है। आपकी अभी सुनने में नहीं आयी है।

मेज पूरी फाइलों से जाम है, बैठकें, भाषण सुबह या शाम है।
कान के पीछे विधायक भी लगे, मन्त्रियों को हाय कितना काम है॥

\+ \+ \+

आज कल कवि सम्मेलनों में अक्सर कवि लोग श्रोताओं से ज्यादा हो जाते हैं। सब अपने-अपने गरूर में चूर, परस्पर एक दूसरे को बेवकूफ समझने वाले। हमारी समझ में तो यह आया है—

राष्ट्र-कवि हों, चाह यह भरपूर है, प्रांत-कवि की नींद में कुछ चूर हैं।
पास निश्चय ही बरेली, आगरा, बात सच यह है कि दिल्ली दूर है॥

× × ×

होलिकोत्सव के उपलक्ष्य में गत गुरुवार को लखनऊ के लालबाग में दो सांड़ लड़ाये गये। विजयी सांड़का जुलूस निकाला गया।

भारत में सांड़ों का बहुत महत्व है। पहले उत्तम व्यक्ति को नर-बृषभ कहा जाता था। नर-पुंगव का भी वही अर्थ है। स्पेन में सांड़ों से आदमी लड़ा करते हैं। लखनऊ में शुरुआत हुई है। देखिये, कहां तक उन्नति हो !

जो न पानी से गले, वह खांड़ होना चाहिये,
जो न धक्के से हिले, वह चांड़ होना चाहिये।
बात सच है प्रगति-युग में आदमी को भाग्य का,
और तन-मन का करारा सांड़ होना चाहिये ॥

× × ×

आज कल सरकारी अफसर बनने की धुन पढ़े लिखों में है। क्यों न हो—

सूझती हैं बात सब उस पारकी, शान करती बात बस तलवार की।
नशा दो-दो बोतलों का नित रहे, धन्य है यह अफसरी सरकार की ॥

\+ \+ \+

इक साहब लिखते हैं कि होली धार्मिक उत्सव है। धर्म पवित्र होता है। अतः गाली न बकना चाहिये।

—कुशल है कि आप इसे धार्मिक उत्सव मानते हैं। अब आप होली मनाने का धार्मिक-विवरण किसी धर्म-ग्रन्थ में देख आइये। उसमें साफ लिखा है कि गालियां अवश्य बकी जायं। अगर आप धर्म को न मानना चाहें तो आपकी इच्छा !

कहते यही पुराण भी, यही धर्म के ग्रन्थ !
बको गालियां प्रेम से यही सनातन पंथ !!

\+ × +

एक साहब लिखते हैं कि हम बहुत दिन से 'हस्त-रेखा-विशारद' बने बैठे हैं। हमारा पेट मुश्किल से चलता है। तांबा भी काफी नहीं बरसता, सोना तो दूर ! तो सुनिये—

सिर्फ ज्योतिष में पड़े यदि कुछ झमेला, बनो तांत्रिक भी, जुटा लो एक चेला।
औरतें एजेण्ट बस दो-चार रख लो, देखना, लगने लगेगा रोज मेला ॥

× × ×

एक सज्जन पूछते हैं कि ताँत्रिक बनने का नुस्खा क्या है ?

—जितने असम्भव, ऊटपटांग, विचित्र काम हैं, सब तांत्रिक के सहायक हो सकते हैं। नमुना पेश है—

लाल कपड़े पहन, पोतो लाल चन्दन, प्रणत को चटपट कहो वैशाख नन्दन।
लोग तांत्रिक समझकर डरते रहेंगे—और, देंगे धन, बनेगा गेह नन्दन ॥

× × ×

एक साहब लिखते हैं कि मैं ताँत्रिक तो हो गया, पर लोगों से पैसा मांगता हूं तो वे भड़क जाते हैं। अजी, आप पैसा मांगते ही क्यों हैं! पैसे से आनेशाली चीजें मांगिये—

उर्द, चावल तेल, कपड़ा हाथ भरका दही, गौका घी, बताशे इस नगरका।
तन्त्र करने के लिए मांगों यही सब, बनो तांत्रिक-हो दलिद्दर दूर घरका ॥

× × ×

मौलाना का कहना है कि एक ज्योतिषी ने हमारी उम्र ६७ बरस की बतलायी है, हमें विश्वास नहीं है।

—ज्योतिषी पहुँचे हुए जान पड़ते हैं—

उम्र लम्बी ज्योतिषी बतलायगा, यदि मरा कोई, न कहने आयगा।
जी गया तो फिर अटल विश्वासकर, दण्डवत कर फूल-फल दे जायगा।

× × ×

भारत बहुत पुराना आस्तिक देश है। कोई कितनी भी धर्म निरपेक्षता प्रकट करे, तन्त्र-मन्त्र-ज्योतिष से पीछा नहीं छूट सकता।

भाग्यका मुंह लोग लखने लग गये, तन्त्रका फल मधुर चखने लग गये।
औरकी क्या बात, शिक्षा के सचिव ज्यौतिषी अब पास रखने लग गये॥

× × ×

एक सज्जन पूछते हैं कि ज्योतिष क्या है ?

—ज्योतिष बहुत टेढ़ी चीज है, लेकिन ज्योतिषी होना सहज है। याद रखिये—

जब फिरे तकदीर मत घबराइये, बिना पैसे की दूकान चलाइये,!
उंगलियों पर मेष-वृष गिन भाव से, बांध पग्गड़ ज्योतिषी बन जाइये!

× × ×

एक साहब ने पूछा है कि ज्यौतिष पर विश्वास किया जाय या नहीं ? जरूर विश्वास कीजिये ज्यौतिषपर। पर, ज्यौतिषियों पर नहीं—जो दो-दो पैसे में तकदीर बताते हैं या लम्बे-चौड़े विज्ञापन करते हैं। ऐसे अधिकतर ज्यौतिषी ऐसे हैं—

बोतलों में बह गया जब बाप का धन, यार खिसके; बिके घरके सभी बरतन!
एक पिंजरा, एक चिड़िया, कार्ड कुछ ले, ये सड़कपर आ विराजे ज्यौतिषी बन!

× × ×

एक साहब लिखते हैं कि आजकल अध्यापक लोग मन लगाकर छात्रों को नहीं पढ़ाते।

—हम उन्हें ज्यादा दोषी नहीं ठहराते। वे क्या करें। उनका हाल यह है—

प्रिंसिपल के चरण छूते हाजिरी घर जा बजाएँ,
वन्दना सेक्रेटरी की नित करें, पूजा रचाएँ,
पान दें हेडक्लर्कको बख्शीस दें चपरासियों को
काम टीचर को बहुत हैं छात्र-गण को कब पढ़ाएँ।

\+ + +

एक साहब पूछते हैं कि प्रतिभा किसे कहते हैं।

—प्रतिभा उस बुद्धि को कहते हैं जो नयी-नयी सूझ की खान हो, नये-नये उन्मेष जिसमें हों, यह पुरानी बात है। आज कल प्रतिभा यह है कि पचास जगहों से पचास बातें चुनकर एक लेख या कविता तैयार कर दी जा.—

दस जगह से बीस बातें सिर्फ चुन लें, सिलसिले का चला करघा उन्हें बुन लें!
काम यह करते रहें बस दो वर्ष तक, बड़े लेखक हो रहेंगे आप सुन लें!

\+ + +

समझ में नहीं आता कि कवि लोग, अन्य कवियों को कवि क्यों नहीं समझते! यह भी अजीब बात है—

भाव हर एक इन्हें गूढ़ नजर आता है, शब्द जो आ पड़े रूढ़ नजर आता है,
लेती अंगड़ाइयाँ जब भी प्रतिभाउनकी, जो भी हो कवि, उन्हें मूढ़ नजर आता है।

× × ×

आजकल कवि सम्मेलन जमते क्यों नहीं—एक सज्जन का प्रश्न।

—क्योंकि हम भी कवि हैं, आप भी और कवि सम्मेलनों का लक्ष्य यह है—

बैठने को एक कोना चाहिये, पान का तैयार दोना चाहिये।
जमे सम्मेलन कि उखड़े, उंह ! मगर अन्त में जलपान होना चाहिये ॥

× × ×

एक साहब पूछते हैं कि कवि में क्या विशेषता होती है।

—बहुत तरह के कवि होते हैं, सबकी अलग-अलग विषताएं होती हैं। चाटुकार कवियों की विशेषता तो आप पढ़ ही चुके। कवियों की एक विशेषता यह होती है कि वे ऐसी चीजें भी देखा करते हैं, जो साधारण लोगों को नहीं देख पड़ती—

वायु का पुष्पित लता को खूंदना चंद्र, का दग कमलिनी के मूंदना।
बन्द कर आंख महाकवि देखते, कंज पर दो-दो मृगों का कूदना ॥

× × ×

एक साहब पूछते हैं कि कवि क्रांतदर्शी होता है, इसका क्या अर्थ ?

—संक्षेप में यों समझिये कि इसका अर्थ है—दूर-दर्शी, लिफाफे से चिट्ठी का मजमून भापनेवाला, दूर की चीज को भी साफ देखनेवाला, कवि-सम्मेलन के निमन्त्रण पत्र को देखकर यह समझ जानेवाला कि वहां दक्षिणा कितनी मिलेगी आदि—

दूरकी चीज भी पास नजर आती है, शुद्ध केसर हरी घास नजर आती है।
खोपड़ी में जब नाचती प्रतिमा उनकी, जो अधेड़ हो वह सास नजर आती है ॥

× × ×

कवियों की बात चली तो सुनिये। ये भी विचित्र जीव होते हैं। देखने-सुनने में तो आदमी ही लगते हैं, पर इनके दिमाग में कोई पुर्जा आदमी से ज्यादा होता है—

गास की चोज उन्हें दूर नजर आती है, चांदनी, शंख का चूर नजर आती है।
होती जब भी सवारी कभी कविता की, दिनदहाड़े गधी हूर नजर आती है॥

× × ×

राज्य में अनेक अविवाहित कवि हैं, सरकार उन्हें एक-एक शरणार्थी कन्या सौंप दे और मासिकवृत्ति बांध दे। इस प्रकार कवियों की सहायता भी हो जायगी और कन्याओंकी भी। सरकार को यह शर्त मंजूर हो तो दो-एक नाम हम भी बता दें। कवियों को समझाने-बुझाने का जिम्मा हमारा, कवियों को हम बहुत गहरे जानते हैं। उनके कुछ गुण सुनिये—

उन्हें औरत भी अंगीठी नजर आती है, गालियां, मार भी मीठी नजर आती है।
आंखमें देखते हैं वे हिरन या खंजन, चांदकी शक्ल भी सीठी नजर आती है॥

+ × ×

सुना है, कई कवियों ने एक उत्सव में मन्त्रीजी की तारीफ में कविताएं टाईप करा ली थीं, पर निमन्त्रण न पाने से मन मार कर रह गये।

—एक कवि हमें भी मिल गये थे। हम कतराये तो उन्होंने दौड़ाकर हमें पकड़ा और कहने लगे—

कल्पनाका दूध, मनकी खांड़ समझो, भाव रखनेका मुझे बस टांड़ समझो।
भगते हो क्यों, रुको, बैठो, सुनाऊं अजी, कवि हूँ मैं, मुझे मत सांड़ समझो॥

× × ×

एक साहब ने नायिका वर्णन प्रस्तुत किया। उन्होंने उसके अंगों में विभिन्न नगरों का निवास बताते हुए कहा कि हृदय में काठ गोदाम है।

काठ और पत्थर तक पहले के कवि पहुँचे थे। 'काठ गोदाम' तक नहीं। अपने राम ने भी मुद्रालंकारके सहारे, देवी महिमर्दिनी की स्तुति की है, सो हाजिर है—

चन्द्रभानु तव दृगन मैं कमला अंग अमंद !
चरन सिंह बाहिनी लखे भौ सम्पूर्णानन्द !!

× × ×

एक सज्जन लिखते हैं कि आज कल कवि-सम्मेलनों में वे कवि नही जमते, जो सस्वर नहीं पढ़ते। हम तो कवियों का यह भविष्य देख रहे हैं कि सस्वर पढ़ना क्या, धीरे-धीरे कविता का भाव भी 'बताना' पड़ेगा। हमारी सलाह यह है—

पैर पर घुंघरू सजाना सीखिये, भाव बतलाकर लजाना सीखिये !
रंग सम्मेलन बदलते जा रहे, ढोल भी कविजी बजाना सीखिये !

× × ×

एक साहब, लिखते हैं कि हम अपने आत्मसम्मान के कारण, किसी भी नौकरी में टिक नहीं पाते। क्या करें।

—आत्म-सम्मान को तिलांजलि दीजिये। पहला साधन हम बतालाये देते हैं—एक तरफ से सबके पैर छूना शुरू कर दीजिये—चाहे आदमी हो, चाहे गधा। यह कर लीजिये तो दूसरा साधन बता देंगे। सुनिये—

व्यर्थ संताप, खेद है काफी, बेद धरिये, लवेद है काफी !
वह जमाना है आज भैयाजी, नाक बेकार, छेद है काफी !

एक साहब पूछते हैं कि 'रूप' क्या है।'

—न्याय शास्त्र तो रूप को 'गुण' मानता है—सिर्फ आंखों से जो चीज़ (गुण) देख पड़े, वह रूप है। हमारी बात यह है—

'रूप' क्या है? रीझ ही कहिये, नयनकी रीझ क्या है?—हार कहिये उसे मनकी!
और मन? वह एक है बदमाश अन्धा, रीझ पर वह दौड़ गिरता गति पवनकी।

× × ×

एक साहब पूछते हैं कि रूप का उपयोग क्या है?

—सुखी मनको और सुखी बनाना। दुखी मन को रूप के मां-बाप भी सुखी नहीं बना सकते। पर, रूप में एक झमेला भी है, जिसके लिए तैयार रहना चाहिये। उस अनुभव का विवरण यह है—

थी यही पल-पल हमारी कामना, रूप से हो जाय क्षण भर सामना!
जब हुआ यह—ताकते हम रह गये, था नहीं मालूम आंचल थामना!

× × ×

जगह-जगह प्रांतीय कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव हुए, हो रहे हैं। दौड़धूप, शोरगुल, परस्पर आक्षेप आदिका बाजार गर्म है। कुछ ऐसा ही दृश्य नरक में भी होता है। एक नेता जी वहाँ पहुँचे तो उन्हें चुनाव याद आ गये—

नरक में था शोर, चिल्लाहट रुलाई, पड़ें कोड़े कहीं आरे से चिराई।
पहुँचे नेताजी लगे यह प्रश्न करने—कहाँ, किसका यह प्रचंड चुनाव भाई॥

+ + +

एक साहब लिखते हैं कि हमारे प्रांत के शिक्षा मंत्री जी जब तब शिक्षकों को खूब जली कटी सुना देते हैं, इसका क्या रहस्य है।

हमारी समझ में तो एक ही बात आती है कि वह वेतन बढ़ाने की माँग करते हैं। वह चुपचाप अपना काम करते रहें तो शिक्षा मंत्री जी को क्यों कुछ कहना पड़े—

राष्ट्र-तरु के तुम मनोहर फूल हो, तुम अशिक्षा-शीत रोधक तुल हो,
यदि कहो वेतन बढ़ाने को कभी, मूर्ख अध्यापक! नयन के शूल हो!

× × ×

एक साहब लिखते हैं कि हम सरकारी स्कूल में अध्यापक हैं। पांच साल से ऊपर हो गये। इस बीच हमने एम० ए० आदि परीक्षाएं भी पास कर लीं। पर हम अस्थायी ही हैं।

—भगवान का आप पर अनुग्रह है। वह स्थायी विपत्ति में आपको नहीं फँसाना चाहता। इसे भगवान का संकेत समझ कर किसी और काम की तलाश कीजिये—

कीजिये खूब जन—मनोरंजन कीजिये कंकरीट का भंजन।
होइयेगा न भूल कर टीचर, बेचिये घूम—घूम करमंजन॥

+ + +

एक साहब पूछते हैं कि हम मोटे ज्यादा हो गये हैं, कुछ इलाज बताइये।

—साहब, हम न बैद, न हकीम, न शौकिया होम्योपैथ! इसलिए 'दवा' तो बता नहीं सकते। हाँ, एक उपाय बता सकते हैं। अगर आप पढ़े लिखे हों तो किसी सरकारी स्कूल में अध्यापक हो जाइये। भगवान् की दया से, दो साल में ही, आपके मित्र भी आपको न पहचानेंगे। अध्यापकों का हाल आज कल ऐसा है—

दूध पी-पी कर इन्हीं की बुद्धि का, बहुत बालक हो बड़े, 'सर' हो गये।
बहुत से अफसर हुए, मन्त्री हुए मांड़ चट्टों के बहुत घर हो गये।
लोग छूते पैर, करते आरती, और दुहने दौड़ते ले बालटी,
नहीं कोई घास आगे डालता, आज छुट्टा गाय टीचर हो गये॥

\+ + +

टीचरी पहले बहुत सम्मान की चीज थी। अब मार खाने की निशानी है। कई तो जान से भी हाथ धो चुके हैं। अब सबसे बढ़िया नौकरी है चपरासी की। रोब अलग, 'ऊपरी' आमदनी अलग—

टीचरी आजकल हुई फाँसी, यह लगातार है खाँसी।
नौकरी में अगर बदा मरना, होइये क्यों न आप चपरासी॥

× × ×

सनातनी मानते हैं कि 'पुं' नामक एक नरक है। उसमें वे ढकेले जाते हैं, जिनको पुत्र न हो। 'पुत्र' का अर्थ है—पुंनरक से त्राण करनेवाला। इसीलिए भारत में विवाह का अर्थ सहधर्मिणी खोजना नहीं, 'पुत्र उत्पन्न करनेवाली' खोजना है। पुत्र न होने पर मनुष्य देवताकी पूजा करता था। अब सुई से पुत्र होने पर न पुं नरक का डर, न देवता का निहोरा—

पुंनरक का जायगा मिट घोर डर भी, देवताओं की न होगी कुछ कदर भी।
पाठपूजा, यज्ञ, जप-तप बंद होंगे सुई, पुत्रों से भरेगा मनुज घर भी॥

× × ×

एक सज्जन ने 'पत्र' छपवाया है। कि लखनऊ में हुई मेडिकल कान्फ्रेंस में कुछ 'सार' न था।

—हमें तो सबसे अधिक 'सार' यह लगा कि कान्फ्रेंस ने 'वैद्य-सर्जनों' के खिलाफ एक शब्द न कहा। नीम हकीमों की निंदा की, पर 'नीमवैद्य-सर्जन' को तरह दे दी गयी। बात भी ठीक है—

यह कलम मेरी जुही का मेल है, खींचते गो सुत जिसे वह रेल है।
बैदजी ने पास कर ली सर्जनी, हैट से मोटी शिखा का मेल है।

× × ×

एक सज्जन को आश्चर्य इस बात पर है कि सरकार ने जो वैद्य-सर्जन नामक कलम तैयार की है, उसके खिलाफ कोई प्रस्ताव क्यों न आया। ये लोग न पूरे वैद्य हैं, न पूरे डाक्टर।

—एलोपैथों को विश्वास होगा कि ये लोग कभी न कभी पूरे डाक्टर हो जायेंगे, आधे वैद्य तो अभी ही रह गये।

—मौलाना का कहना है कि इस कलम को पनपने दिया जाय। इस कलम से फिर कोई कलम बने तो पता नहीं क्या अच्छी चीज बन जाय! मौलाना ने वैद-सर्जनों पर एक चौपाया कहा है। वह यह है—

पास स्टेथिस्कोप, देखें नब्ज भी, ये सुई से दूर करते कब्ज भी!
वैद-सर्जन एक अद्भुत चीज हैं, यह कलम नोखी, पकी भी, सब्ज भी!

× × ×

एक सज्जन पूछते हैं कि कई सज्जनों के साइनबोर्डों पर हमने वैद्य-सर्जन' लिखा देखा है। यह क्या बला है?

—प्रांतीय सरकार ने एक 'कलम' तैयार की है। उसमें वैद्य और डाक्टर दोनों के कुछ-कुछ गुण होते हैं। मसलन, ऐसे सज्जन रोगी को खाने के लिए मकरध्वज दे सकते हैं और इन्जेक्शन स्ट्रेप्टोमाइसीन का

लगा सकते हैं। रोग के निर्णय के लिए वे नब्ज देख सकते हैं और स्टेथिस्कोप से दिल देख सकते हैं। हमारे मौलाना ने फरमाया है—

शेख-पंडित एक टोले में यहाँ, सुई-काढ़ा एक झोले में यहाँ !
धन्य यह सरकार की चोखी कलम, वैद-सर्जन एक चोले में यहाँ !

× × ×

एक सज्जन पूछते हैं कि हम लेखक होना चाहते हैं, कोई सरल तरकीब बताइये।' हम 'लेटेस्ट' तरकीब बता रहे हैं, जो कुछ दिनों से काम में लायी जा रही है। पुरानी पत्र-पत्रिकाएं पढ़कर ऐसे लेख और कविताएं चुन लीजिये, जिनके लेखक इस समय प्रसिद्ध न हों, उनकी नकल करके पत्रिकाओं में छपने भेज दीजिये—

कुछ पुराने पत्र बस पढ़ जाइये, लेख कविता काटते बढ़ जाइये।
नकल उनकी भेजिये छपने तुरन्त, लेखकी की सड़क पर चढ़ जाइये॥

× × ✓

एक साहब पूछते हैं कि 'दुनिया में सबसे बड़ा कौन ? कुछ दिन पहले तक हम धन को सबसे बड़ा समझते थे, अब धन्धे को समझते हैं। चन्दा मांगना आवे तो आदमी महीने भर में धनी हो जाय। धन और चन्दे का संवाद सुनिये—

कहा धनने—'नये विधिका रचा मैं, सभी जाते, मगर रहता बचा मैं।
खड़ा चन्दा कहीं था पास ही में, कहा—'पहचान ले, तेरा चचा मैं॥

× + ×

पता चला है कि यमदूतों ने यमराज को सूचना दी है एक नेता जी नरक निवासियों को भड़का रहे हैं। वे कहते हैं—

संघटित हो, पल न खोना चाहिये, बेड़ियां तोड़ो न सोना चाहिये ।
नरक में नेता कहें—यमराज का, क्यों नया न चुनाव होना चाहिये ॥

× × ×

लखनऊ में एक साहब हैं, जो कई बार लिख चुके हैं कि हम एक सार्वजनिक काम के लिए अफसरों के यहाँ दौड़ते-दौड़ते तंग हो गये, पर वे लोग कभी कायदे से बात ही नहीं करते ।

—यह तो उन अफसरों की योग्यता है सुनिये—

कीजिये रात-शामकी बातें, चाँदनी और घाम की बातें !
भूलियेगा कभी न, हम अफसर, कीजियेगा न काम की बातें !

× × ×

प्रसिद्ध लेखक 'उग्र' जीने दो होली विशेषांकों की आलोचना में लिखा है कि कुछ मित्र हास्य लिखना छोंड़ दें तो बहुत अच्छा हो, सम्पादक लोग उनसे लिखाना छोड़ दें तो बहुत अच्छा हो ।

—उग्रजी तो ऐसी बात करते हैं कि हँसी आती है । संस्कृत में कहा है—जिसे शास्त्र नहीं आता वह कवि बन जाता है और जिसे कुछ लिखना नहीं आता, वह हास्य की हजामत बनाने लगता है । ऊपर से कद्रदां भी मिल जायँ तो क्या कहना—

भाव की श्री नीच गृह की सारिका, छन्द-छवि स्वच्छन्द गणिका-दारिका ।
शब्दनिधि में कुछ न अपना, बस यही हास्य मर्यादा हृदय की दारिका ॥

× × ×

एक साहब पूछते हैं कि मैं छात्र हूँ, कुछ नाम कर डालना चाहता हूँ । उपाय बताइये ।

—एक पाकेट संस्था साहित्य की खोल डालिये। उसके मन्त्री हो जाइये। संवाददाताओं का चरण चुम्बन कर अपनी संस्था के फर्जी समाचार छपवाइये। किसी अच्छे कवि को मित्र बना कर पाँच-सात कविताएँ लिखवा लीजिये और अपनी कहकर सुनाइये। इन उपायों से जितना नाम होगा, वह छात्रावस्था के लिए काफी है। उसके बाद या तो टीचर हो जाइयेगा या धनिया हल्दी बेचियेगा—

एक फर्जी सड़क अपनी कूटिये सभा-सम्मेलन जहाँ हो, टूटिये।
वही पण्डित—जो मुखर हो, धूर्त हो, कीर्ति मिलती है उसे ही, लूटिये॥

महर्षियों के उपदेश

अत्यन्त सुन्दरी की सुन्दरता उसकी सब इच्छाओं का हनन कर देती है। —महर्षिहयवरट्।

मनुष्य के मित्र उससे प्रेम करते हैं, पर उसे जैसा का तैसा रहने देते हैं। उसकी पत्नी भी प्रेम करती है, पर वह उसे सम्पूर्ण बदल देती है। —महर्षिजबगडदश्

मित्रों के हाथों में अपनी कमजोरियों की रस्सी जितनी ही लम्बी दोगे, उतना ही शीघ्र वे तुम्हे फांसी पर लटका देंगे। —महर्षि लुक्

जीवन बहुत छोटा होता है। गम्भीर बातें सोचने के लायक वह नहीं होता। —महर्षि ऐऔच्

पति वह प्रेमी है जो अपने संपूर्ण गर्व को लोढ़े से कूट देता है।

—महर्षि ञमङणनम्

प्रकृति ने लेखकों को रचा, उन्हें थोक भाव में स्वर्ग से ढकेल दिया और उन्हें 'पेटेण्ट' करा लिया। तब जो सामग्री बची, उससे प्रकृति ने आलोचक पैदा किये। इसीलिए वे लेखकों को गाली देते हैं।

—महर्षि एओङ्